फुलवाड़ी • रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

फुलवाड़ी

श्रीमोहनलाल वाजपेयी द्वारा अनूदित

विश्वभारती ग्रन्थालय
६-३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन
कलकत्ता ७

प्रथम बँगला संस्करण : १६३४
हिन्दी अनुवाद 'विश्वभारती पत्रिका' : १६४४
हिन्दी अनुवाद पुस्तकाकार : १६५१

प्राप्तिस्थान
विश्वभारती ग्रन्थालय
६-३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन, कलकत्ता ७

फुलवाड़ो

१

पीठ की तरफ़ तकिये ऊँचे करके रखे हुए हैं। रोगशय्या पर नीरजा अर्द्धशायित अवस्था में लेटी है। पावों पर सफ़ेद रेशम की चादर खींच दी गई है, मानो हल्के मेघों-तले तृतीया की फीकी चाँदनी हो। पीला हो आया है उसका शंख-जैसा रंग, ढीली हो गई हैं कलाई की चूड़ियाँ, क्षीण हाथों पर नीली नसों की उभरी रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही हैं; आँखों के घन-पक्ष्म पल्लवों की कोर रोग की कालिमा से घिर आई है।

सफ़ेद संगमर्मर का फ़र्श है, दीवार पर रामकृष्ण परमहंसदेव की तसवीर टँगी है; कमरे में पलँग, तिपाई, बेत के दो मोढ़े और एक कोने की तरफ़ कपड़े टाँगने की अलगनी के सिवा और कोई असबाब नहीं है। एक कोने में पीतल की कलसी में रजनीगंधा के गुच्छे सजा दिए गए हैं; उन्हींकी भीनी ख़ुशबू कमरे की बद्ध हवा में बंदी हो गई है।

पूरब की तरफ़ की खिड़की खुली हुई है। वहीं से दिखाई पड़ रहा है बाग़ीचे का आर्किडघर, जालीदार बुनाव

से घिरा हुआ, जिसपर अपराजिता-लता छिछलकर फैल गई है। नज़दीक ही झील के तीर पर पंप चल रहा है, कलकल-छलछल करता हुआ पानी हर नाली में दौड़ रहा है—क्यारियों के किनारे-किनारे। गंध-निविड़ अमराई में कोयल मानो प्राण छोड़कर बोल रही है।

बाग़ की ड्योढ़ी पर टन-टन करके दुपहरिया का घंटा बज उठा। साँय-साँय करती हुई दुपहरिया के साथ जैसे उसके सुर का कहीं कोई मेल है। अभी तीन बजे तक मालियों की छुट्टी है। घंटे की आवाज़ के साथ नीरजा का अंतर दुख गया—मन जैसे उदास हो आया। घर की आया दरवाज़ा बंद करने के लिये आई तो नीरू बोल उठी: 'नहीं नहीं, रहने दे।'—पेड़ों के तले जहाँ धूप-छाया बिखरी-बिखरी फिरती है, वहीं वह निर्निमेष ताकती रह गई।

उसके पति आदित्य ने फूलों के व्यवसाय में प्रसिद्धि प्राप्त की है। विवाह के दिन से आरंभ करके आज तक दोनोंका प्रेम नाना धाराओं में बहता हुआ इसी बाग़ के सेवा-जतन के नाना काम-काजों में आ मिला था। यहां के फूल-पत्तों में दोनोंके सम्मिलित आनंद ने नव-नव

सौन्दर्य के भीतर नितनया रूप पाया है। जिस तरह प्रवासी आदमी विशेष-विशेष डाक के आगमन के दिन अपने मित्रों की चिट्ठियों की बाट जोहता है, वैसे ही हर ऋतु में वे दोनों बाट जोहा करते थे—भिन्न-भिन्न वृक्षों की पुंजित अभ्यर्थना के लिये।

आज नीरजा को बार बार उन्हीं दिनों की एक तसवीर याद आ रही है। वह कोई बहुत दिनों की बात नहीं, तब भी ऐसा लगता है मानो द्वीपान्तर का मैदान पार करके युगान्तर का इतिहास वर्तमानकाल तक आ पहुँचा हो। बाग़ के पच्छिम की तरफ़ एक पुराना महानीम का वृक्ष है। उसीकी जोड़ी का एक और भी नीम का पेड़ था जो जाने-कब जीर्ण होकर धराशायी हो गया था। उसीकी पींड़ को बराबर तराशकर एक छोटी-सी टेबिल बना ली गई थी। यहीं बैठकर ख़ूब तड़के दोनों चाय पिया करते थे। वृक्षों के बीच-बीच से सब्ज़ डालियों में से छनकर आई हुई सुबह की धूप उनके पाँवों के निकट आकर पड़ती; मैना और गिलहरी प्रसादप्रार्थी के रूप में हाज़िर हो जाते। इसके बाद दोनों मिलकर शुरू कर देते बाग़ीचे के कितने ही कामकाज। नीरजा के सिर पर होती फूल काढ़ी हुई रेशम की छतरी, आदित्य के सिर पर

होती एक सोला-टोपी, कमर में डालें छाँटने की क़ैची। कोई बंधुबांधव यदि मिलने के लिये आते तो बाग़ के कामकाज के साथ ही शिष्टाचार भी चला करता। सहेलियों के मुख से अक्सर ही सुनाई पड़ता : 'भई, सच कहती हूँ, तुम्हारे इन डालिया फूलों को देखकर जलन होती है।'—कोई-कोई अनाड़ी की तरह पूछ बैठता : 'वह क्या सूर्यमुखी है ?' नीरजा बेहद ख़ुश होकर हँसती हुई जवाब देती : 'ना, ना, वह तो गेंदा है।'—कोई व्यवहार-कुशल व्यक्ति एक रोज़ बोले : 'इतना बड़ा मोतिया-बेला किस तरह उगाया है, नीरजादेवी ? आपके हाथों में ज़रूर कोई जादू है। यह तो जैसे बिल्कुल टगर हो !' जानकार बननेवाले को उसी समय अपना पुरस्कार मिला, अर्थात् हला नामक माली की भृकुटि खिंचवाकर वे सज्जन गमले-सहित पाँच बेले के पौधे अपने साथ ही लेते गए। कितने दिन मुग्ध मित्रों के साथ कुंज-परिक्रमा हुई है—फूलों के बाग़ में, फलों के बाग़ीचे में, साग-सब्ज़ी की बाड़ी में। विदा के समय नीरजा डाली में भर देती गुलाब, मैग्नोलिया, कारोनेशन,—उसीके साथ पपीता, काग़ज़ी नीबू, कैथ—उनके बाग़ीचे का कैथ मशहूर था। ऋतु के अनुसार सबके अंत में आया करता कच्चे नारियल का

नीरजा : विवाह के बाद उसके जीवन के दस वर्ष लगातार अविमिश्र सुख में बीते थे

पानी। तृषितजन पीकर कहते: 'कैसा मीठा पानी है!'—उत्तर में सुन पाते: 'हमारे ही बागीचे के नारियल का पानी है'।—इसपर सभी कहते: 'ओहो, तभी तो हम कह रहे थे कि आखिर क्यों इतना मीठा है!'

आज इस भोरवेला में पेड़ों-तले दार्जिलिंग-चाय की वाष्प के साथ बसी हुई नाना ऋतुओं की गंध-स्मृति दीर्घनिश्वास से मिलकर नीरजा के मन में हाय-हाय करती है। सुनहले रंगों से रंगीन अपने उन्हीं दिनों को वह जाने-किस दस्यु के हाथ से छीनकर वापस लौटा लाना चाहती है। विद्रोही मन क्यों किसीको अपने सामने नहीं पाता? भलेमानुसों की तरह सिर झुकाकर भाग्य को स्वीकार कर लेनेवाली लड़की तो वह है नहीं। फिर इसके लिये ज़िम्मेदार कौन है? किस विश्वव्यापी बच्चे का यह लड़कपन है! किस विराट् पागल की यह कृति है! ऐसी परिपूर्ण सृष्टि में इस तरह निरर्थक भाव से उलट-पलट किया तो किसने!

विवाह के बाद उनके जीवन के दस वर्ष लगातार अविमिश्र सुख में बीते थे। मन-ही-मन इसे लेकर सखियों ने उससे ईर्ष्या की थी; सोचा था, नीरजा ने

बाज़ार-दर से कहीं ज़्यादा पा लिया है। उधर आदित्य के दोस्त उसे *'लकी-डाग'* कहकर पुकारा करते।

नीरजा के गार्हस्थ-सुख की पालवाली नाव जिस मामले को लेकर एक दिन पहले-पहल तले से टकराई, वह मामला उनकी पाली हुई 'डाली' नामक कुतिया-द्वारा घटित हुआ था। इस गिरस्ती में गृहिणी के आने के पहले से ही डाली स्वामी के सूने घर की एकांत-संगिनी थी। अंत में उसकी निष्ठा नव-दम्पति के बीच द्विधा विभक्त हुई और भाग नीरजा के ही हिस्से में अधिक पड़ा। बाहर जाने के लिये दरवाज़े के सामने गाड़ी को आते देखते ही कुतिया का मिज़ाज ख़राब हो जाता। वह बार-बार पुच्छ-आन्दोलन द्वारा आसन्न रथयात्रा के विरुद्ध अपनी आपत्ति उत्थापित करती। किन्तु मालिक के तर्जनी-संकेत पर उस बेचारी का बिना-निमंत्रण गाड़ी के भीतर उछल आने का दुःसाहस निरस्त हो जाया करता। तब दीर्घनिश्वास फेंककर पूँछ की कुंडली से अपने नैराश्य को वेष्टित करके दरवाज़े के पास ही पड़ी रहती। उनके लौटने में देर होने पर मुँह उठाकर सूँघती हुई यहाँ-वहाँ फिरती; कुत्ते की अव्यक्त भाषा में आकाश की ओर अपना करुण प्रश्न उच्छ्वसित करती।

अंत में, मालूम नहीं, उसे किस रोग ने आ घेरा ; एक दिन उनके मुख पर अपनी कातर दृष्टि स्तब्ध करके नीरजा की गोद में सिर रखकर वह चल बसी।

नीरजा में प्यार करने की एक प्रचंड ज़िद थी। उस प्यार के विरुद्ध विधाता के हस्तक्षेप की बात उसकी कल्पना के भी बाहर थी। इतने दिन तक अपनी अनुकूल गिरस्ती पर वह अपना निःसंशय विश्वास जमाए आई थी। आज तक इस विश्वास के डिगने का कोई कारण भी उपस्थित नहीं हुआ था। किन्तु आज जब डाली की मौत भी अभावनीय रूप में संभव हो गयी, तब उसके दुर्ग की प्राचीर में जैसे पहली बार छिद्र दिखाई दिया। ऐसा जान पड़ा जैसे यह मृत्यु अशुभ का प्रथम प्रवेश-द्वार हो—मानो विश्वसंसार के परिचालक अचानक ही अव्यवस्थित-चित्त हो उठे हों—उनके आपातप्रत्यक्ष प्रसाद पर भी अब आस्था नहीं रखी जा सकती।

नीरजा के संतान होने की आशा सभीने छोड़ दी थी। जिन दिनों अपने आश्रित गणेश के छोटे बच्चे को लेकर नीरजा की रुकी हुई स्नेहवृत्ति का प्रबल आलोड़न चल रहा था और बच्चा भी जब उसके अशांत अभिघात को और अधिक नहीं सह पा रहा था, उन्हीं दिनों नीरजा के

संतान-संभावना घटित हुई। भीतर-ही-भीतर मातृहृदय भर उठा ; नवजीवन की प्रभात-आभा से भावीकाल का दिगंत अरुणिम हो उठा। पेड़-तले बैठे-बैठे नीरजा नवागंतुक के लिये कितने ही सुंदर बेलबूटेदार सोने-पिरोने के कामों में व्यस्त हो गई।

अंत में प्रसव का समय आया। धात्री आसन्न संकट की बात समझ गई। आदित्य इतना अधिक बेचैन हो गया कि डाक्टर को उसे भर्त्सनापूर्वक अलग रखना पड़ा। अस्त्राघात की आवश्यकता हुई ; शिशु को मारकर जननी को बचाना पड़ा। इस घटना के बाद नीरजा फिर खड़ी न हो सकी। वैशाख की बालुशय्याशायिनी नदी के समान उसकी स्वल्परक्त देह थककर बिछौने पर ही पड़ी रही। प्राणशक्ति की अजस्रता एकबारगी समाप्त होकर चुकने आई। आज बिस्तर के सामने की खिड़की खुली हुई है, तप्त हवा के साथ मुचकुन्द फूलों की सुगंध बहकर आ रही है, अथवा चकोतरा नीबू के फूलों की निःश्वास के मिस मानो उसके वही पूर्वकालीन दूरवर्ती वसन्त के दिन मृदुकंठ से उससे पूछने आए हैं : 'कैसी हो?'

उसे सबसे अधिक पीड़ा तब हुई जब उसने देखा कि

बाग़ के काम में सहयोगिता के लिये आदित्य की दूर के रिश्ते की एक बहन को बुलाना पड़ा है। खुली खिड़की से जब वह देखती कि सरला अभ्रक और रेशम का काम की हुई तालपत्तों की एक टोपी सिर पर लगाए हुए बाग़ के मालियों से काम लेती फिर रही है, तब अपने अकर्मण्य हाथ-पैरों का भार उससे सहा नहीं जाता। तथापि इसी सरला को नीरजा ने अपने स्वस्थ दिनों में प्रत्येक ऋतु में न्यौता देकर बुलवाया था—नवीन पौधे रोपने के उत्सव में शामिल होने के लिये। ऐसे दिन ख़ूब भोर ही से काम शुरू हो जाया करता। इसके बाद झील में तैरकर स्नान, फिर पेड़ों-तले केले के पत्तों में भोजन; दूसरी तरफ़ ग्रैमोफ़ोन में बजता रहता देशी-विदेशी संगीत। उस दिन मालियों को मिलता दही-चिवड़ा-सन्देश। इमली के दरख़्तों के कुंज से ही उनका कलरव सुनाई पड़ता। क्रमशः दिन ढल आता, झील का पानी सिहर उठता अपराह्न की हवा के स्पर्श से, मौलसिरी की शाख़ों में पंछी बोलने लगते, आनन्दमय थकान के साथ दिन का अवसान हो जाता।

जो रस नीरजा के मन में विशुद्ध मधुर था, वही आज कटु क्यों हो गया है? जिस तरह आजकल की अपनी

दुर्बल देह भी उसके लिये अपरिचित है, वैसे ही अपना आज का तीव्र नीरस स्वभाव भी उसका जाना-पहचाना नहीं है। इस स्वभाव में तनिक भी दाक्षिण्य नहीं। कभी-कभी यह दारिद्य उसके निकट ख़ूब ही स्पष्ट हो उठता है, मन में लज्जा जाग उठती है, तब भी किसी भी तरह वह उसे सँभाल नहीं पाती। आशंका होती है, कहीं यह हीनता आदित्य के जानने में तो नहीं आ गई? कौन जाने, किसी दिन वह प्रत्यक्ष देख पाएगा कि आजकल नीरजा का मन चिमगादड़ के चञ्चुक्षत फल की तरह हो गया है—भद्र-प्रयोजन के सर्वथा अयोग्य।

दुपहरिया का घंटा बज उठा। माली चल दिए। सारा बागीचा निर्जन हो गया। नीरजा उसी सुदूर पर अपनी आँखें जमाए रही जहाँ दुराशा की मरीचिका का भी आभास नहीं मिलता, जहाँ छायाहीन धूप में केवल एक सुनसान के बाद दूसरे सुनसान की ही पुनरावृत्ति चल रही है।

रोशनी : नीरजा की आया

२

नीरजा ने पुकारा : 'रोशनी !'

आया कमरे में आई। प्रौढ़ा, अधपके केश, सख्त् हाथों में पीतल के मोटे कंगन, घाँघरे पर ओढ़नी। मांस-विरल देह की भंगी और शुष्क मुख के भाव में एक चिरस्थायी कठिनता की छाप है—मानो वह अपनी अदालत में इन लोगों की गिरस्ती के ख़िलाफ़ राय देने के लिये बैठी हो। नीरजा को उसीने बड़ा किया है, उसकी सारी ममता और दरद नीरजा के लिये ही है। उसके नज़दीक जो भी आया-जाया करता है—नीरजा का पति भी—उन सबके सम्बन्ध में उसके मन में एक प्रकार की सतर्क विरुद्धता का भाव बना ही रहता है।

कमरे में आकर उसने पूछा : 'पानी लाऊँ बिटिया ?

'ना, बैठ।'

आया घुटने ऊँचे करके फ़र्श पर बैठ गई।

नीरजा को बातें करनी हैं, इसीसे आया की ज़रूरत है। रोशनी उसकी स्वगत-उक्तियों की वाहन है।

नीरजा बोली : 'आज बड़े तड़के दरवाज़ा खुलने की आहट सुनाई पड़ी थी।'

आया कुछ बोली नहीं, किन्तु उसके विरक्त मुख के भाव का आशय कुछ ऐसा ही था जैसे कह रही हो : 'कब नहीं सुनाई पड़ती !'

नीरजा ने अनावश्यक प्रश्न किया : 'सरला को लेकर शायद वे बाग़ की तरफ़ गए थे ?'

बात उसकी अच्छी तरह जानी हुई है, तब भी रोज़ यही एक प्रश्न ! एक बार अपना हाथ घुमाकर मुँह फिराकर आया फिर चुप होकर बैठ रही।

नीरजा बाहर की तरफ़ ताकते हुए जैसे अपने आप ही से कहने लगी : 'मुझे भी बड़ी भोर जगाया करते थे, मैं भी जाया करती थी बगिया के काम पर—ठीक उसी समय। सो तो कोई बहुत पुराने दिनों की बात नहीं।'

आया से इस आलोचना में शामिल होने की कोई आशा नहीं करता, तब भी उससे रहा नहीं गया। बोली : 'उनको बिना साथ लिए शायद अब तक बगिया ही सूख जाती !'

नीरजा अपने आप बोले चली : 'बड़े तड़के की फूलों की खेप न्यू मार्केट भिजवाए बिना मेरा एक दिन भी नहीं जाता था। वैसे ही फूलों की खेप आज भी गई थी; मैंने गाड़ी की आवाज़ सुनी थी। आजकल खेप कौन सहेज देता है, रोशनी ?'

आया ने इस अच्छी तरह जानी हुई बात का कोई जवाब नहीं दिया, ओठों को दबाए बैठी रही।

नीरजा आया से बोली : 'और चाहे जो हो, जितने दिन मैं थी, माली लोग कामचोरी कभी नहीं कर पाए।'

आया भीतर-भीतर कुछ घुमड़ी, बोली : 'वे दिन कहाँ रहे, अब तो लूट मची है दोनों हाथ !'

'सच ?'

'मैं क्या झूठ कह रही हूँ ! कलकत्ते के नये बजार तक आखिर कितने फूल पहुँचते हैं ! जमाईबाबू के बाहर होते ही पिछले दरवाजे पर हमारे ही मालियों की फूलों की दूकान लग जाती है।'

'ये लोग कोई निगरानी नहीं रखते ?'

'रखने की गरज किसे है ?'

'जमाईबाबू से क्यों नहीं कहा तूने ?'

'मैं कौन कहनेवाली होती हूँ ? खुद ही अपना मान बचाकर चलना पड़ता है। राख रानी, अपना पानी ! मगर तुम क्यों नहीं कहतीं ? तुम्हारा ही तो सब कुछ है।'

'होने दे, होने दे न। अच्छा तो है ! चले न इसी तरह कुछ दिन, इसके बाद जब सब कुछ मिट्टी में मिलने आएगा तब सब अपने आप ही पकड़े जाएँगे। एक दिन

समझने का वक्त आएगा कि माँ से सौतेली माँ का प्यार बड़ा नहीं होता। अभी चुपचाप बैठी रह।'

'फिर भी इतनी बात मैं कहे देती हूँ बिटिया, तुम्हारे उस हला माली से कोई काम कराना भी बहुत मुश्किल है।'

काम-काज के प्रति हला की उदासीनता ही आया की खीझ का एकमात्र कारण हो सो नहीं, उसपर नीरजा का स्नेह बराबर नाजायज़ तौर पर बढ़ता ही जा रहा है, यही दर-असल सबसे बड़ा कारण है।

नीरजा बोली : 'मैं माली को दोष नहीं देती। नयी मालकिन के शासन को वह बेचारा भला सहे भी तो किस तरह? उसके यहाँ सात पुश्त से मालीगिरी होती आई है और तुम्हारी बहनजी की सब विद्या बिल्कुल किताबी है। उसपर उनका हुकुम चलाना क्या फबता है? उनके दुनिया से न्यारे क़ायदे-क़ानूनों को वह मानना नहीं चाहता, मेरे पास आकर शिकायत करता है। मैं कहती हूँ, तू ऐसी बातों को कान ही मत दिया कर; चुप रहा आ।'

'उस दिन जमाईबाबू उसे निकालने ही जा रहे थे।'

'क्यों, किसलिये?'
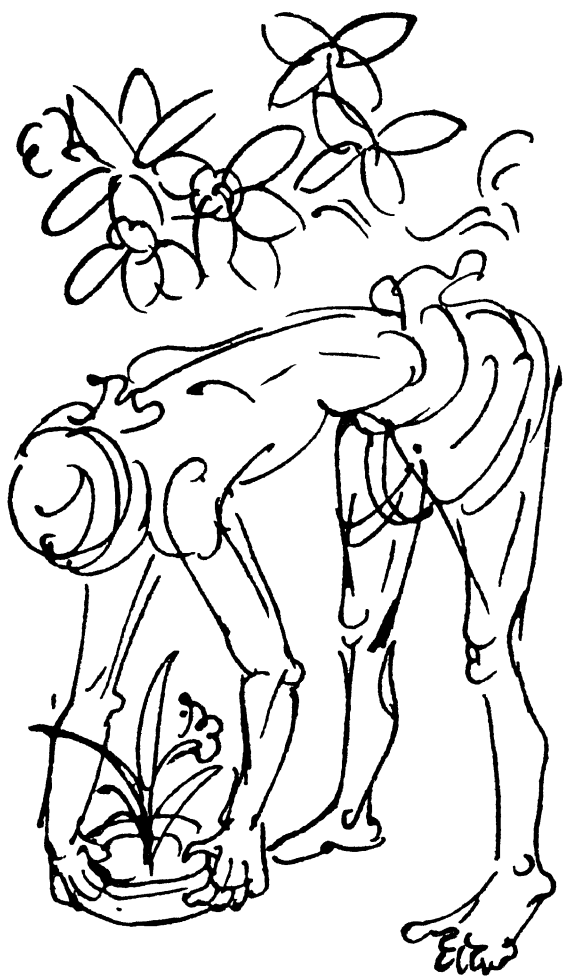
'वह बैठा-बैठा बीड़ी का कश खींच रहा था और उसीके सामने बाहर की गाय आकर पौधे चरे जा रही थी। जमाईबाबू ने कहा : गाय को क्यों नहीं खेदता?—उसने मुँह पर ही जवाब दिया : मैं गाय खेदने जाऊँगा! गाय ही तो मुझे खेद रही है। क्या मुझे अपनी जान का डर नहीं?'

सुनकर नीरजा हँस पड़ी, बोली : 'उसकी बातें ऐसी ही हुआ करती हैं! सो तू चाहे जो कह, रोशनी, उसे मैंने अपने ही हाथों गढ़ा है।'

'जमाईबाबू भी तुम्हारी ही खातिर तो उसे सहते आ रहे हैं, फिर चाहे बगिया में गाय घुसे कि गेंड़ा खेदे। इत्ता सिर चढ़ना अच्छा नहीं होता, सो भी कहे देती हूँ।'

'चुप भी रह, रोशनी! मन के किस दुःख से उस बेचारे ने गाय को नहीं भगाया सो क्या मैं समझती नहीं? उसके जी में तो लगी है आग!—वह रहा हला—सिर पर गमछा लपेटे कहीं जा रहा है; पुकार तो उसे।'

आया की आवाज़ पर हलधर माली कमरे में आया। नीरजा ने पूछा : 'क्यों रे, आजकल फिर कोई नई फ़रमाइश हुई है क्या?'

हला बोला : 'हुई क्यों नहीं। सुनकर हँसी भी आती है और आँखों में पानी भी।'

'सो कैसे, सुनूँ भला।'

'वह जो सामने मल्लिकों की पुरानी हवेली गिराई जा रही है, वहीं से ईंट-पत्थर-मलमा लाकर पेड़ों-तले बिछा देना होगा—ऐसा हुकुम हुआ है। मैंने कहा, धूप के समय पेड़ तो तप उठेंगे, झुलस जाएँगे, सो कोई कान ही नहीं देता मेरी बात पर।'

'तो बाबूजी से क्यों नहीं कहता?'

'कहा तो था बाबूजी से। डाँटकर कहने लगे, चुप रह!—भाभीजी, मुझे छुट्टी दे दो। अब तो सहा नहीं जाता।'

'सो तो देख ही रही हूँ, टोकरे में कूड़ाकर्कट तक ढोकर लाते हुए देखती हूँ तुझे!'

'भाभीजी, तुम्हीं मेरी सदा की मालकिन हो। तुम्हारी ही नजर के सामने मेरा सिर नीचा कर दिया। बिरादरी में जात चली जाएगी। मैं क्या कोई कुली-मजूर हूँ?'

'अच्छा, अभी जा। तुम लोगों की बहनजी जब ईंट-सुरखी ढोने को कहें, तब मेरा नाम लेकर कह देना

कि मैंने मना कर दिया है। क्यों, खड़ा क्यों रह गया ?'

'देस से चिट्ठी आई है, बड़े हल का बैल मर गया'—कहकर हलधर सिर खुजलाने लगा।

नीरजा बोली, 'नहीं, मरा नहीं, ख़ासा ज़िन्दा है। ले ये दो-रुपये और अब ज़्यादा बकवास मत कर।'—कहते हुए नीरजा ने तिपाई पर रखे हुए बाक्स से रुपये निकालकर दे दिए।

हला फिर भी रुख़सत नहीं हुआ।

'अब और क्या ?'

'घरवाली के लिये एकाध पुरानी साड़ी—तुम्हारी जय-जयकार होगी !'—यह कहकर पान की छाप से काले पड़े हुए मुंह को पसारकर उसने हँस दिया।

नीरजा बोली : 'रोशनी, दे तो दे उसे वह अलगनी-वाली साड़ी।'

रोशनी ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा : 'यह कैसी बात है, वह तो तुम्हारी करघेवाली ढाकाई साड़ी है।'

'होने दे न ढाकाई साड़ी—मेरे लिये आज सभी साड़ियाँ बराबर हैं। अब पहनूँगी ही भला किस दिन !'

रोशनी दृढ़ कंठ से बोली : 'नहीं, सो नहीं होगा। उसे तुम्हारी वह लाल किनार की मिलवाली साड़ी दूँगी। देख हला, बिटिया को अगर तू इसी तरह परेशान करेगा तो बाबू से कहकर तुझे निकलवा दूँगी।'

हला नीरजा के पाँव पकड़कर रुआसे सुर में बोला : 'मेरे ही भाग फूटे हैं भाभीजी!'

'क्यों, तुझे क्या हुआ रे?'

'आयाजी को मासी कहकर पुकारता हूँ। मेरी माँ नहीं है, सो आज तक यही समझता आया हूँ कि अभागे हला को आयाजी प्यार करती हैं। भाभीजी, अगर आज मुझपर तुम्हारी दया हुई तो वे क्यों भाँजी मारती हैं? सो कसूर किसीका नहीं, सब मेरी किस्मत का खेल है। नहीं तो अपने हला को दूसरोंके हाथों सौंपकर तुम आज खाट पकड़तीं!'

'कोई डर की बात नहीं है रे, तेरी मासी तुझे प्यार ही करती है। तेरे आने से पहले तेरे ही गुन गा रही थी। रोशनी, दे तो दे उसे वह साड़ी, नहीं तो धन्ना दिए पड़ा रहेगा।'

अत्यंत विरस मुख से आया ने साड़ी लाकर उसके सामने फेंक दी। हला ने उसे उठाकर भूमिष्ठ होकर

सरला : हाथ में आर्किड् का एक फूल था

प्रणाम किया। इसके बाद उठकर बोला: 'उस गमछे में इसे लपेट लूँ भाभीजी! मेरे हाथ गंदे हैं—दाग लग जाएँगे।'—यह कहकर सम्मति की राह देखे बिना ही अलगनी से तौलिया उठाकर उसमें साड़ी लपेटते हुए हला ने तेज़ी से प्रस्थान किया।

नीरजा ने आया से पूछा: 'अच्छा आया, तुझे ठीक ठीक मालूम है, बाबूजी बाहर चले गए हैं?'

'मैंने अपनी आँखों देखा। कैसी जल्दी में थे! टोप लगाना तक भूल गए।'

'ऐसा तो यह आज पहली बार ही हुआ। रोज़ सुबह उनसे जो फूल पाती थी, उसमें नाग़ा हुआ। अब हर रोज़ यह नाग़ा बढ़ता ही जाएगा। अंत में मैं जा पड़ूँगी अपनी गिरस्ती के उस घूरे में जहाँ चूल्हे को जला-बुझा कोयला फेंक दिया जाता है।'

सरला को आते देखकर आया मुँह फिराकर चली गई।

सरला कमरे में आई। हाथ में आर्किड् का एक फूल था। शुभ्र फूल, पँखुड़ियों के अग्रिम भाग में बैंगनी रंग की रेखा का आभास दिखाई दे रहा था—मानो पर फैलाए हुए एक बड़ी-सी तितली हो। सरला छरहरी देह की

लंबी-सी लड़की है, रँग साँवला है। सबसे पहले नज़र आती हैं उसकी बड़ी-बड़ी आँखें—उज्ज्वल और करुण। मोटे खद्दर की साड़ी पहने है, केश अयत्नपूर्वक बाँधे गए हैं जो श्लथ बंधन में कंधे की तरफ़ झुक आए हैं। असज्जित देह ने यौवन के आगमन को अनादृत कर रखा है।

नीरजा ने उसके मुँह की तरफ़ नहीं ताका। सरला ने धीरे से फूल को बिछौने पर रख दिया।

नीरजा अपनी विरक्ति के भाव को बिना दबाए ही बोली : 'फूल किसने लाने को कहा था ?'

'आदित्‌भैया ने।'

'ख़ुद नहीं आ सके ?'

'बड़ी जल्दी-जल्दी न्यू-मार्केट की दूकान की तरफ़ जाना पड़ा—सीधे चाय ख़त्म करके।'

'क्यों—ऐसी भला क्या जल्दी थी ?'

'कल रात आफ़िस का ताला टूटकर रुपये चोरी हो जाने की ख़बर आई थी।'

'तो क्या खींच-तानकर पाँच मिनिट का वक्त भी नहीं निकाल सकते थे ?'

'पिछली रात तुम्हारी पीड़ा बढ़ गई थी। सुबह की तरफ़ कुछ नींद झिप आई थी। इसीसे द्वार के पास तक

आकर लौट गए। मुझसे कह गए थे कि अगर दुपहर तक वापस न आ पाएँ तो यह फूल तुम्हें दे दूँ।'

दिन का काम शुरू करने से पहले आदित्य रोज़ विशेष रूप से चुनकर एक फूल स्त्री के बिछौने पर रख जाया करता था। नीरजा ने प्रतिदिन उसीकी बाट जोही है। आज का विशेष फूल आदित्य सरला के हाथ दे गया; यह बात उसके ध्यान में नहीं आई कि फूल का प्रधान मूल्य अपने ही हाथों देने में है। गंगाजल होते हुए भी नल के भीतर से आने में उसकी सार्थकता नहीं रहती।

नीरजा फूल को अवज्ञा-सहित ठेलकर बोली : 'जानती हो, मार्केट में इस फूल की क्या क़ीमत है! इसे वहीं भेज दो, फ़िज़ूल बर्बाद करने की क्या ज़रूरत?'—कहते-कहते उसका गला भारी हो आया।

सरला समझ गई सारी बात। समझ गई कि जवाब देने से आक्षेप का वेग बढ़ता ही जाएगा—कम नहीं होगा। चुपचाप खड़ी रही। ज़रा ठहरकर नीरजा ने ख़ाहमख़ाह प्रश्न किया : 'जानती हो इस फूल का नाम?'

सरला सहज ही कह सकती थी, 'नहीं जानती'; किंतु शायद अभिमान पर चोट लगी; बोली : 'एमारिलिस।'

नीरजा ने अनुचित उत्ताप के साथ डाँट-जैसे सुर में कहा : 'ख़ूब जानती हो! उसका नाम है ग्रैण्डी फ़्लोरा।'

सरला मृदु स्वर में बोली : 'होगा।'

'होगा का क्या मतलब? बेशक यही नाम है। क्या यह कहना चाहती हो कि मुझे मालूम नहीं?'

सरला जानती थी, नीरजा ने जान-बूझकर ही ग़लत नाम बताकर प्रतिवाद किया है—दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर अपनी पीड़ा शांत करने के लिये। वह चुपचाप हार मानकर बाहर चली जा रही थी कि नीरजा ने घूमकर पुकारा : 'सुनती जाओ। क्या करती रहीं आज सारी सुबह? कहाँ थीं?'

'आर्किड्-घर में।'

नीरजा उत्तेजित होकर बोली : 'आर्किड-घर में इस तरह बार-बार जाने की तुम्हें क्या ज़रूरत?'

'पुराने आर्किडों को अलग-अलग सुलझाकर नये आर्किड् बनाने के लिये आदित् भैया मुझसे कह गए थे।'

नीरजा डाँट के सुर में बोल उठी : 'अनाड़ी की तरह तुम सब बर्बाद कर डालोगी। मैंने अपने ही हाथों से हला माली को बनाना सिखलाया है, उसे हुक्म देने से क्या वह नहीं कर सकता?'

इस बात पर कोई जवाब नहीं चल सकता। इसका अकपट उत्तर तो यही था कि नीरजा की मातहती में हला माली का काम अच्छा ही चलता था लेकिन सरला के साथ एकबारगी ही नहीं चलता। यहाँ तक कि वह उदासीनता दिखाकर उसका अपमान तक किया करता है।

माली इतनी बात भली भाँति समझ गया था कि इस अमलदारी में अच्छी तरह काम न करने से ही इस अमलदारी की मालकिन ख़ुश रहेंगी। यह मानो डिग्री की अपेक्षा कालेज का बायकाट करके परीक्षा पास न करने को ही अधिक मूल्यवान ठहराना था।

सरला नाराज़ हो सकती थी लेकिन हुई नहीं। वह समझती है कि भाभी के जी में कौन-सी कसक टीसा करती है। निःसन्तान माँ के सारे हृदय को जिस बगिया ने घेर रखा है, आज दस बरस बाद वह उसके इतने निकट होकर भी वहाँ से संपूर्ण निर्वासित है। आँखों के आगे ही निष्ठुर विच्छेद है।—नीरजा बोली : 'बंद कर दो, बंद कर दो वह खिड़की।'

सरला ने बंद करके पूछा : 'अब नारंगी का रस ले आऊँ ?'

'नहीं, कुछ नहीं लाना; अब जा सकती हो।'

सरला ने डरते-डरते कहा : 'मकरध्वज खाने का वक्त हो आया है।'

'नहीं, ज़रूरत नहीं मकरध्वज की।—तुम्हारे ऊपर बाग़ के और भी किसी काम की फ़रमाइश है क्या?'

'गुलाब की डालें लगानी हैं।'

नीरजा ज़रा-सा ताना देकर बोली : 'सो उसका यही समय है शायद! यह अ.क्ल उन्हें दी किसने, सुनूँ भला?'

सरला मृदु स्वर में बोली : 'मुफ़स्सिल से अचानक बहुत-सारे आर्डर पाकर वे किसी तरह अगली बरसात से पहले ही काफ़ी पौधे तैयार करने का इरादा किए बैठे हैं। वैसे मैंने नाहीं की थी।'

'तुमने नाहीं की थी! ओ, अच्छा, बुलाओ तो हला माली को।'

हला माली हाज़िर हुआ।

नीरजा बोली : 'बाबू बन बैठे हो? गुलाब की क़लम खोंसते हाथ में काँटे चुभते हैं! बहनजी तुम्हारी एसिस्टेण्ट माली हैं न? बाबूजी के शहर से लौटने से पहले ही जितनी क़लमें तैयार कर सके, कर डाल। आज तुमलोगों को छुट्टी नहीं है सो कहे रखती हूँ।

जलाए हुए घास-पात के साथ रेत सानकर ज़मीन तैयार कर रख—झील को दाहिनी मेड़ पर।' मन-ही-मन ठीक कर लिया कि वहीं लेटे-लेटे वह गुलाब के पौधे अवश्य तैयार करा लेगी। हला माली को अब छुटकारा नहीं मिल सकता।

अचानक हला प्रोत्साहन को हँसी से मुँह भरकर बोला: 'भाभीजी, यह एक पीतल का भाँड़ है, कटक के हरसुन्दर माइती का बनाया हुआ। ऐसी चीजों पर दरद तुम्हीं रख सकती हो। तुम्हारी फूलदानी बनकर फबेगा भी खूब।'

नीरजा ने पूछा: 'दाम कितना है?'

जीभ काटकर हला बोला: 'ऐसी बात मत कहो भाभीजी! भला इस लुटिया का आपसे दाम लूँगा! गरीब हूँ सही मगर ओछी तबीयत का तो नहीं हूँ। आखिर तुम्हारा ही खा-पहिरकर तो आदमी बना हूँ।'

पात्र को तिपाई पर रखकर हला दूसरी फूलदानी से फूल चुनकर सजाने लगा। अंत में जाने को उद्यत होकर फिर ज़रा मुड़कर बोला: 'तुम्हें भांजी की शादी की बात तो बतला हो चुका हूँ। बाजूबन्द की याद मत भूल जाना भाभीजी! अगर पीतल का गहना दूँ

तो तुम्हारी ही बदनामी होगी। इतने बड़े घर का माली, उसीके घर ब्याह; दुनिया भर के लोग मुँह जोहते बैठे हैं।'

नीरजा बोली: 'अच्छा, कोई बात नहीं, अभी तू जा।'

हला चला गया। नीरजा हठात् करवट लेकर तकिये पर सिर रखकर घुमड़ उठी: 'रोशनी रोशनी, मैं छोटी हो गई हूँ, उस हला माली की तरह ही हो गया है मेरा मन।'

आया बोली: 'सो क्या कह रही हो बिटिया! छिः छिः!'

नीरजा जैसे अपने आप ही से कहने लगी: 'मेरे जले कपाल ने मुझे बाहर से तो नीचे झुका ही दिया लेकिन भीतर से क्यों झुकाया? मैं क्या जानती नहीं कि हला मुझे आज किस नज़र से देखता है! मेरे पास इसकी-उसकी बातें लगाकर हँसते-हरखते इनाम ले गया! उसे बुला तो दे। ख़ूब अच्छी तरह डाँटूगी, उसकी यह शैतानी मिटानी ही होगी।'

आया जब हला को बुलाने चली तो नीरजा बोल उठी: 'रहने दे, रहने दे, आज रहने दे।'

३

थोड़ी देर बाद उसके पति का चचेरा भाई रमेन आकर बोला : 'भाभी, भैया ने मुझे भिजवाया है। आज आफ़िस में काम की बड़ी भीड़ है, वे होटल में ही खा लेंगे, लौटते हुए देर होगी।'

नीरजा हँसती हुई बोली : 'ख़बर देने का बहाना करके एक दौड़ में भागते चले आए हो बाबू! क्यों, आफ़िस का बैरा शायद मर गया?'

'तुम्हारे पास आने के लिये तुम्हें-छोड़ और किसी बहाने की ज़रूरत ही क्यों होगी भाभी! बैरा बेचारा क्या समझेगा इस दूत-पद का दरद!'

'अजी, ग़लत जगह में मीठा बखेर रहे हो! कैसे भूल पड़े इस कमरे में? तुम्हारी मालिनी आज एकाकिनी हैं नीबू-कुञ्ज में, जाकर देख आओ।'

'पहले कुंजवन की वनलक्ष्मी को भेंट दे दूँ, तब जाऊँ मालिनी की खोज में।'—यह कहकर भीतर की जेब से एक कहानियों की किताब निकालकर नीरजा के हाथों में दे दी।

नीरजा ख़ुश होकर बोली : 'अश्रु-बन्धन'! ठीक यही

किताब चाह रही थी। असीस देती हूँ तुम्हारी फुलवारी की *मालिनी* सदा बँधी रहे हृदय के पास—हँसी के बन्धन से—वही जिसे तुम कहते हो कल्पना की सहचरी, तुम्हारे स्वप्नों की संगिनी! हाय रे दुलार!'

रमेन अचानक बोला: 'अच्छा भाभी, एक बात पूछूँ, ठीक उत्तर देना।'

'कैसी बात?'

'सरला के साथ क्या आज तुम्हारी कुछ अनबन हो गई है?'

'क्यों भला?'

'देखा, झील के तीर वह चुपचाप घाट पर बैठी है। लड़कियों का तो पुरुषों की तरह काम से भागनेवाला उड़न-छू मन नहीं होता। ऐसी बेकारी की हालत सरला की मैंने पहले कभी नहीं देखी। पूछा, मन किस ओर है?—बोली, जिस ओर गर्म हवा सूखे पत्तों को उड़ा ले जाता है उसी ओर।—मैंने कहा, यह तो पहेली बुझाई। स्पष्ट भाषा में कहो।—वह बोली, क्या सभी बातों की भाषा हुआ करती है?—फिर वही पहेली! तभी गाने की कड़ी याद आई—काको बचन कलेस दयो!'

'हो सकता है तुम्हारे भैया ने—'

'सो हो ही नहीं सकता। भैया मर्द ठहरे। तुम्हारे इन मालियों-वालियों को घुड़की दे सकते हैं लेकिन पुष्पराशाविवाग्निः—यह भी क्या संभव है ?'

'अच्छा, फालतू बकवास की ज़रूरत नहीं। एक काम की बात कहूँ, मेरा अनुरोध रखना ही होगा। दुहाई है, सरला से तुम ब्याह कर लो। सयानी-कुवाँरी कन्या का उद्धार करने से महापुण्य होगा।'

'पुण्य का लोभ नहीं है लेकिन कन्या का लोभ है, सो तुम्हारे पास बाहलफ़ .क़ुबूल करता हूँ।'

'तो फिर अड़चन किस जगह है ? क्या उसका मन नहीं है ?'

'यह तो कभी पूछा ही नहीं। कहा तो तुमसे, वह मेरी कल्पना की सहचरी ही रहेगी, जीवन की सहचरी नहीं होगी।'

सहसा तीव्र आग्रहपूर्वक रमेन का हाथ दबाकर नीरजा बोली : 'होगी क्यों नहीं ? होना ही होगा। मरने से पहले तुम्हारा ब्याह अवश्य देख जाऊँगी, नहीं तो भूत बनकर तुमलोगों को सताऊँगी सो कहे रखती हूँ।'

नीरजा की व्यग्रता देखकर रमेन थोड़ी देर तक विस्मित

होकर उसके मुँह की ओर ताकता रहा। अंत में सिर हिलाकर बोला : 'भाभी, मैं रिश्ते छोटा लेकिन उम्र में बड़ा हूँ। जंगली बीज बहती हवा में उड़कर आता है मगर आश्रय पाकर अपनी जड़ें भी पसारता है। तब किसकी ताक़त है जो उसे उखाड़ सके!'

'मुझे उपदेश देने की ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हारी गुरुजन हूँ, तुम्हें उपदेश देती हूँ, तुम ब्याह कर लो। देर मत करो। इसी फागुन महीने में अच्छी लगुन है।'

'मेरे पत्रा-पंचाग में तीन-सौ-पैंसठ दिन ही अच्छे हैं। मगर दिन भले ही हों, कोई रास्ता नहीं। एक बार जेल हो आया हूँ, इस समय भी जेल के मुँह की ओर के रपटीले रास्ते पर क़दम बढ़ाए हूँ। इस राह पर प्रजापति के दूत का आना-जाना नहीं होता।'

'तो शायद आजकल की लड़कियाँ ही जेलख़ाने से डरती हैं?'

'न भी डरती होंगी लेकिन यह रास्ता सप्तपदी-गमन का रास्ता नहीं। इस पथ पर दुलहिन को बाज़ू में न रखकर मन में रखने से शक्ति मिलती है। वह मेरे मन ही में सदा के लिये रह गई।'

तिपाई पर हारलिक्स दूध का पात्र रखकर सरला

चली जा रही थी। नीरजा बोली : 'जाना मत। सुनो सरला, यह फ़ोटो किसका है, पहचान सकती हो?'

सरला बोली : 'यह तो मेरा ही है।'

'तुम्हारी उन्हीं पहले के दिनों की तसवीर है, जब अपने बड़े चाचा के यहाँ तुम दोनों बाग़ में काम किया करते थे। देखने से लगता है पंद्रह की उम्र होगी। मरहठी लड़कियों की तरह कछोटा कसकर साड़ी पहनी है।'

'यह तुम्हें कहाँ मिली?'

'उनके एक डेस्क में देखी थी मगर तब अच्छी तरह ख़्याल नहीं किया। आज वहीं से मँगवा ली। बाबू, उस समय की सरला से आज की सरला देखने में कहीं सुंदर है। तुम्हें कैसा लगता है?'

रमेन बोला : 'उस समय क्या कोई सरला थी भी? कम-से-कम मैं तो उसे नहीं जानता था। मेरे निकट आज की सरला ही एकमात्र सत्य है। तुलना करूँ तो किसके साथ?'

नीरजा बोली : 'उसका आज का मुख हृदय के किसी रहस्य से सघन होकर भर उठा है, मानो जो मेघ शुभ्र सफ़ेद था, आज उसीके भीतर से सावन की बरसात झरूँ-

झरूँ कर रही है। इसीको तुम लोग रोमैण्टिक कहा करते हो,—न बाबू ?'

सरला जाने के लिये उद्यत हुई, नीरजा बोली : 'थोड़ा-सा बैठो न सरला। बाबू, एक बार पुरुषों की निगाह से सरला को देख लूँ। अच्छा, बताओ तो सही, उसको कौन-सी चीज़ सबसे पहले नज़र में पड़ती है ?'

रमेन बोला : 'सभी कुछ एक साथ।'

'निश्चय ही उसकी दो आँखें ! जाने कैसी एक गहरी चितवन से ताकना जानती है वह। ना, उठो मत सरला ! ज़रा-सा और बैठो।—उसकी देह भी कैसी भरी-पूरी है !'

'तुम क्या उसे नीलाम करने बैठी हो भाभी ? जानती तो हो, वैसे ही मेरे उत्साह में कोई कमी नहीं।'

नीरजा दलाली के उत्साह से बोल उठी : 'बाबू, सरला के दोनों हाथ तो देखो भला, जैसे सबल हैं वैसे ही सुडौल-कोमल, और फिर उनकी श्री भी वैसी ही है। ऐसे हाथ कहीं और भी देखे हैं ?'

रमेन सहसा हँसकर बोला : 'और कहीं देखे हैं कि नहीं, इसका उत्तर तुम्हारे ही मुँह पर देने से कुछ अप्रिय सुनाई पड़ेगा।'

'ऐसे दोनों हाथों पर अपना दावा नहीं करोगे ?'

'हमेशा के लिये दावा नहीं भी किया तो क्या, प्रतिक्षण का दावा तो किया ही करता हूँ। तुम्हारे कमरे में जब भी चाय पीने आता हूँ तब चाय की अपेक्षा कुछ अधिक जो पाता हूँ सो उन्हीं हाथों के गुण से। उस रसग्रहण में पाणिग्रहण का जो कुछ संपर्क रहता है, इस अभागे के लिये वही काफ़ी है।'

सरला मोढ़ा छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसे कमरे से जाने का उपक्रम करते देख रमेन द्वार छेंककर बोला : 'एक वादा करो, तब रास्ता दूँगा।'

'क्या—कहो।'

'आज शुक्ला चतुर्दशी है। मैं-मुसाफ़िर आज तुम्हारे बाग़ में आऊँगा। कहने के लिये बातें हो सकती हैं मगर कहने की ज़रूरत ही नहीं होगी। अकाल पड़ा है, पेट भरकर दर्शन भी नहीं जुटते। अचानक इस कमरे में मुट्ठीभर मिलन की जो भीख मिली सो मंज़ूर नहीं। आज तुम्हारे पेड़ों-तले ख़ूब धीरे-सुस्ते बैठकर मन को भर लेना चाहता हूँ।'

सरला ने सहजे स्वर में ही कहा : 'अच्छा, आना !'

रमेन पलँग के पास लौटकर बोला : 'तो मैं चलूँ भाभी !'

'अब रुकने की क्या ज़रूरत ? भाभी का जो काम था सो तो पूरा हो ही गया।'

रमेन चला गया।

४

रमेन के चले जाने पर नीरजा हाथों में मुँह छिपाए बिछौने पर पड़ी रही। सोचने लगी, ऐसे ही मन को मत्त कर देनेवाले दिन उसके भी थे। कितनी ही वासन्ती रातों को उन्होंने उद्विग्न कर दिया है। संसार की बारह आना स्त्रियों की भाँति वह क्या पति की घर-गिरिस्ती का असबाब थी ? बिछौने पर पड़े पड़े उसे बार-बार याद आती है, कितने ही दिन उसके पति ने उसकी अलकें खींचकर आर्द्रकण्ठ से कहा है—'मेरे रंग-महल की साक़ी !'

दस वर्षों में रँग तनिक भी म्लान नहीं हुआ, प्याला छलकता ही रहा। पति उससे कहा करता : 'सुना है, उस युग में तरुणियों के पावों का परस पाकर अशोक में फूल

खिल उठते थे, मुख-मदिरा के छींटों से वकुल फूल उठता था। मेरी बगिया में वही कालिदास का युग पकड़ाई दे गया है। जिस पथ पर रोज़ तुम्हारे पाँव पड़ते हैं, उसीके दोनों ओर रंग-बिरंगे फूल खिल उठते हैं। वसन्त की हवा ने मदिरा सींच दी है, गुलाब के उपवन में उसीका नशा छाया है।'—बातों-ही-बातों में वह कहा करता : 'तुम न होतीं तो इस फूलों के स्वर्ग में रोज़गारी की दूकान वृत्रासुर बनकर दखल जमा लेती। मेरे भाग्य के प्रभाव से तुम हो इस नन्दनवन की इन्द्राणी!'—हाय रे, यौवन तो आज भी चुका नहीं किन्तु उसकी महिमा चली गई। तभी तो इन्द्राणी आज अपना आसन पूर्ण नहीं कर पा रही। उस दिन उसके मन में क्या कहीं लेशमात्र भी भय था! जहाँ वह थी वहाँ और कोई न था; अपने आकाश में वह प्रभातकालीन अरुणोदय के समान परिपूर्ण अकेली थी। आज कहीं भी ज़रा-सी छाया देखते ही उसकी छाती धड़कने लगती है, अपने पर आज उसे भरोसा ही नहीं रह गया। अन्यथा वह सरला कौन होती है! किस बात पर उसे गर्व है? आज उसे लेकर भी मन संदेह से डोल उठता है! कौन जानता था, समय चुक जाने से पहले ही

ऐसी दीनता भाग्य में घटित होगी। इतने दिन इतना सुख, इतना गौरव अजस्र भाव से देकर भी विधाता ने इस तरह चोर की भाँति सेंध लगाकर अपना ही दिया हुआ वैभव लूट लिया।

'रोशनी, सुन जा।'

'क्या है, बिटिया?'

'तेरे जमाईबाबू एक दिन मुझे रंगमहल की रंगिनी कहकर पुकारते थे। हमारे ब्याह को दस बरस हुए, वह रँग तो आज भी फीका नहीं पड़ा, मगर वह रंगमहल?'

'जाएगा कहाँ तुम्हारा रंगमहल, बना हुआ है। कल तुम सारी रात सोईं नहीं, तनिक सो तो जाओ, मैं तुम्हारे तलवे सहला दूँ।'

'रोशनी, पूर्णिमा नज़दीक है। ऐसी कितनी ही चाँदनी रातों में मैं सोई नहीं; हम दोनों टहलते रहा करते सारी रात बाग़ में। वह जागना—और यह जागना! आज अगर सो सकूँ तो जान बचे, मगर निगोड़ी नींद आना जो नहीं चाहती।'

'ज़रा-सा चुप तो हो जाओ भला, नींद आप ही आ जाएगी।'

'अच्छा, वे लोग भी क्या टहला करते हैं बाग़ में—चाँदनी रात में ?'

'भोर के खेप के लिये फूल चुनते देखा है। टहलेंगे कब, फ़ुरसत ही कहाँ मिलती है ?'

'माली लोग तो आजकल ख़ूब टाँग पसारकर सोया करते हैं। फिर भी शायद उन्हें जान-बूझकर ही नहीं उठाते ?'

'तुम नहीं हो, सो उन्हें कोई छू भी सके ऐसी किसकी हिम्मत है !'

'यह गाड़ी की आवाज़ सुनाई पड़ी न ?'

'हाँ, जमाईबाबू की गाड़ी है।'

'ज़रा छोटा आइना आगे बढ़ा दे। वह बड़ा गुलाब तो ले आ फूलदानी से। से.फटीपिन का डिब्बा कहाँ गया, देखूँ भला। आज मेरा चेहरा बड़ा फीका पड़ गया है। जा तू कमरे से।'

'जाती हूँ लेकिन दूध-बालों जो पड़ी रह गई, खा लो मेरी रानी-बिटिया !'

'पड़ी रहने दे, नहीं खाऊँगी।'

'तुम्हारी दो ख़ूराक दवा भी आज रह गई।'

'बकवास मत कर, तू जा—कहती हूँ, वह खिड़की खोलती जा।'

आया चली गई।

टन-टन करके तीन बज गए। धूप का रँग आरक्त हो आया, छाया लंबी होकर फैल गई पूरब की ओर। दक्खिन से हवा का झोंका आया, झील का पानी थिरक उठा, माली लोग फिर काम पर आ गए। नीरजा दूर ही से जितना देख पाती है उतना देखा करती है।

द्रुत पदों से आदित्य कमरे में दौड़ता आया। वासन्ती रँग के देशी लैबर्नम् फूलों की मंजरी से हाथ भरे हुए थे। उन्हींसे नीरजा के पावों के इर्दगिर्द सब कुछ ढँक दिया। बिछौने पर बैठते ही उसके हाथ दबाकर बोला: 'आज कितनी देर से तुम्हें नहीं देखा नीरू!' सुनकर नीरजा अपने को और न रोक सकी, फूट-फूटकर रोने लगी। आदित्य ने पलँग से उतरकर फ़र्श पर घुटनों के बल बैठ नीरजा के गले में बाहें डाल दीं; उसके भीगे गालों को चूमकर कहा: 'मन-ही-मन तुम ज़रूर जानती हो, मेरा कोई दोष नहीं था।'

'इतने निश्चय के साथ किस तरह जान सकूँगी—कहो तो भला? मेरे क्या अब वे दिन रहे हैं!'

'दिनों की बात का हिसाब लगाकर क्या होगा? तुम तो मेरी वही तुम हो।'

'आज मुझे सभी कुछ से भय होता है। मन को ज़ोर जो नहीं मिलता।'

'थोड़ा-सा भय अच्छा ही लगा करता है—न? ताना देकर मुझे तनिक उस्का देना चाहती हो। यह चातुरी स्त्रियों को स्वभावसिद्ध है।'

'और भूल जाना शायद पुरुषों को स्वभावसिद्ध नहीं है?'

'भूलने की फ़ुर्सत ही कहाँ देती हो!'

'सो मत कहो, सो मत कहो, निगोड़े विधाता के शाप से ख़ूब लंबी फ़ुर्सत दे रखी है!'

'उल्टी बात! सुख के दिनों में भूला भी जा सकता है, दर्द के दिनों में नहीं।'

'सच कहो, आज सवेरे तुम मुझे भुलाकर नहीं चले गए थे?'

'क्या कहती हो तुम! चले तो जाना पड़ा मगर जितनी देर लौट नहीं सका, मन को चैन नहीं मिला।'

'कैसे बैठे हो तुम, अपने पाँव बिस्तर पर उठाकर बैठो।'

'बेड़ी डालना चाहती हो कि कहीं भाग न जाऊँ?'

'हाँ, बेड़ी डालना चाहती हूँ। जनम-मरन में तुम्हारे दोनों पाँव निःसन्देह मेरे पास बंदी ही रहेंगे।'

'मगर बीच-बीच में तनिक-सा संदेह भी किया करो, उससे दुलार का स्वाद बढ़ जाता है।'

'नहीं, तनिक भी नहीं, इतना-सा भी नहीं। तुम्हारे समान पति भला किस लड़की को मिला है? अगर तुम पर भी सन्देह करू, तो मुझे ही धिक्कार है।'

'तो फिर मैं ही तुमपर सन्देह करूँगा, नहीं तो नाटक जमेगा नहीं।'

'सो कर सकते हो, कोई भय नहीं। वह होगा प्रहसन।'

'चाहे जो कहो, मगर आज तुम मुझपर नाराज़ हो ही गई थीं।'

'फिर वही बात! उसकी सज़ा तुम्हें नहीं देनी पड़ेगी, उसका दण्ड-विधान अपने ही भीतर है।'

'दण्ड किसलिये? क्रोध का ताप यदि बीच-बीच में दिखलाई न पड़े तो समझूँगा कि प्यार की नाड़ी ही छूट गई है।'

'यदि किसी दिन तुमपर भूल से भी क्रोध करूँ तो निश्चित समझना, वह मैं नहीं, कोई अपदेवता मुझपर हावी है।'

'अपदेवता तो एक-एक हम सभीका होता है जो बीच-बीच में अकारण अपनेको जना दिया करता है। सद्‌बुद्धि जब आती है तो राम-नाम का स्मरण करता हूँ, फिर वह तत्काल ही भाग खड़ा होता है।'

आया कमरे में आई, बोली : 'जमाईबाबू, आज सुबह से बिटिया ने दूध नहीं पिया, दवा नहीं पी, मालिश नहीं कराई। ऐसा करने से हमलोग उसके साथ नहीं निभा सकते!'—कहकर तेज़ी से हाथ झुलाती हुई चली गई।

सुनते ही आदित्य उठ खड़ा हुआ, बोला : 'तो अबके मैं ग़ुस्सा करूँ ?'

'हाँ करो, ख़ूब ग़ुस्सा करो, जहाँ तक बन सके ग़ुस्सा करो। मैंने अन्याय किया है सही,—लेकिन उसके बाद माफ़ कर देना।'

आदित्य द्वार के पास जाकर पुकारने लगा : 'सरला, सरला!'

सुनते ही नीरजा की प्रत्येक शिरा जैसे झनझना उठी। समझ गई, जहा काँटा विंधा है वहीं हाथ जा पड़ा है। सरला कमरे में आई। आदित्य ने विरक्त होकर पूछा : 'नीरू को दवा नहीं दी आज, सारा दिन खाने को भी कुछ नहीं दिया ?'

नीरजा बोल उठी : 'उसे क्यों डाँट रहे हो भला ! उसका क्या दोष है ? मैंने ही तो शरारत करके कुछ नहीं खाया-पिया, मुझे डाँटो न। सरला तुम जाओ, फ़िज़ूल क्यों खड़ीखड़ी डाँट खाओगी !'

'जाएगी क्या, पहले दवा निकाल दे। हार्लिक्स-मिल्क तैयार कर लाए।'

'आहा, सारा दिन उसे माली के काम में थकाए डालते हो, फिर ऊपर से नर्स का काम क्यों ? तनिक दया भी नहीं आती तुम्हारे मन में ? आया को बुलाओ न ?'

'आया क्या ठीक-से कर सकेगी ये सब काम ?'

'बड़ा भारी काम है न ! ख़ूब कर सकेगी—और भी अच्छी तरह कर सकेगी।'

'लेकिन— '

'लेकिन और क्या ? आया, आया !'

'इतनी उत्तेजित मत होओ, देखता हूँ कोई आफ़त बुला बैठोगी।'

'मैं बुला देती हूँ आया को'—कहकर सरला चली गई। नीरजा की बात का प्रतिवाद करे, इतना भी उसके मुँह में नहीं आया। आदित्य भी मन-ही-मन चकित

हुआ ; सोचने लगा, क्या सचमुच ही सरला से अनुचित काम लिया जा रहा है ?

औषधि-पथ्य हो जाने पर आदित्य ने आया से कहा : 'सरला बहनजी को बुला दो।'

'बात-बात में सरला बहनजी। बेचारी को चैन नहीं लेने दोगे, देखती हूँ।'

'कुछ काम की बात है।'

'रहने दो न अभी काम की बात।'

'ज़्यादा देर नहीं लगेगी।'

'सरला लड़की ठहरी, भला उसके साथ इतनी क्या काम की बातें! बल्कि हला माली को बुलवाओ न ?'

'तुम्हारे साथ ब्याह होने के बाद से एक बात आविष्कार कर पाया हूँ : स्त्रियाँ ही काम की होती हैं, पुरुष तो मज्जा तक बेकार जीव होता है। हमलोग काम किया करते हैं निहायत मजबूरी होने पर, तुमलोग करती हो प्राणों के सहज उत्साह से। इस विषय पर एक थीसिस लिखने का विचार है। मेरी डायरी में इसके बहुत से उदाहरण मिल जाएँगे।'

'उसी नारी को आज जिस विधाता ने उसके प्राणों के काम से वञ्चित कर रखा है उसकी क्या कहकर निन्दा

करूँ ! भूकंप से भड़-भड़ाकर मेरे काम–काज का शिखर टूट पड़ा है, तभी तो मकान के खँडहर में भूतों का डेरा जमा है।'

सरला आई। आदित्य ने पूछा : 'आर्किड्-घर का काम हो गया ?'

'हाँ, हो गया।'

'सब ?'

'सभी।'

'और गुलाब की कटिंग ?'

'माली ने उसके लिये ज़मीन तैयार की है।'

'ज़मीन ! वह तो मैंने पहले ही तैयार करा रखी है। हला माली के सुपुर्द किया है, सो दातौनों की बाग़बानी होगी और क्या !'

बात में जल्दी से बाधा देकर नीरजा बोली : 'सरला, जाओ तो, नारंगी का रस निकाल लाओ, उसमें ज़रा-सा अदरक का रस भी मिला देना और ज़रा-सी शहद।'

सरला सिर नीचा किए कमरे से बाहर हो गई।

नीरजा ने पूछा : 'आज तुम तड़के उठे थे न, जैसा हमलोग रोज़ उठा करते थे ?'

'हाँ, उठा था।'

'घड़ी में उसी तरह एलार्म की चाबी दे रखी थी ?'

'हाँ, क्यों नहीं।'

'वहीं नीम-तले, उसी कटे पेड़ के तने पर चाय का सामान—बासू ने सब ठीक-ठाक कर रखा था ?'

'हाँ, नहीं तो तुम्हारी अदालत में हरजाने का दावा पेश करता।'

'दोनों ही चौकियाँ बिछी हुई थीं ?'

'बिछी थीं ठीक पहले की ही तरह। और वही नीली कोरवाला वासंती रंग का चाय का सामान था; चाँदी का दूध का पात्र, छोटी सफ़ेद पत्थर की कटोरी में चीनी और ड्रैगान-अंकित जापानी ट्रे।'

'दूसरी चौकी ख़ाली क्यों रख छोड़ी थी ?'

'अपनी इच्छा से नहीं रखी थी। आकाश में तारों की गिनती भी ठीक ही थी, केवल शुक्ला पंचमी का मेरा चाँद दिगन्त के बाहर था। सुयोग होता तो उसे पकड़कर ले आता !'

'सरला को क्यों नहीं बुला लेते अपनी चाय की टेबिल पर ?'

इसके उत्तर में सहज ही कहा जा सकता था, तुम्हारे आसन पर और किसीको बुलाने का जी ही नहीं होता।

किन्तु सत्यवादी ने यह न कहकर कहा : 'सवेरे के समय शायद वह कुछ जप-तप किया करती है, मेरे-समान भजन-पूजनहीन म्लेच्छ तो है नहीं।'

'चाय पीने के बाद शायद आज उसे आर्किड्-घर की तरफ़ ले गए थे ?'

'हाँ, कुछ काम था, उसे समझाकर वहीं से भागना पड़ा मुझे दूकान की तरफ़।'

'अच्छा, एक बात पूछती हूँ, सरला के साथ रमेन की शादी क्यों नहीं कर देते ?'

'क्या शादी लगाना मेरा पेशा है ?'

'नहीं मज़ाक़ नहीं। ब्याह तो करना ही होगा, रमेन-जैसा पात्र और मिलेगा कहाँ ?'

'पात्र तो है एक तरफ़ और पात्री भी है दूसरी तरफ़; बीच में मन नामक पदार्थ है कि नहीं इसका पता लगाने की कभी फ़ुर्सत ही नहीं मिली। दूर से देखने पर ऐसा कुछ लगता है जैसे इसी जगह पर खटका-सा है।'

तनिक तीखी होकर नीरजा बोली : 'कोई खटका न रहता, अगर तुम्हें सचमुच का आग्रह होता।'

'ब्याह करे कोई, और सचमुच का आग्रह हो केवल

मेरा—इससे भला कहीं काम चला है ? तुम्हीं कोशिश कर देखो न ।'

'कुछ दिन फूल-पत्तों से उस लड़की की दृष्टि को छुट्टी तो दो भला, निगाह ख़ुद ही ठीक जगह पर जा पड़ेगी।'

'सोहागरात की शुभ दृष्टि के प्रकाश में फूल-पत्ते, पहाड़-पर्वत सभी स्वच्छ होकर पारदर्शी हो जाते हैं। उसे तो एक क़िस्म की एक्स-रे कहना चाहिए, और क्या !'

'झूठी बात ! असल में तुम्हारी मर्ज़ी ही नहीं कि यह ब्याह हो ।'

'इतनी देर बाद अब पकड़ी है तुमने सही बात। सरला के चले जाने पर मेरे बाग़ की क्या हालत होगी, कहो तो ? नफ़ा-नुक़सान भी तो सोचना पड़ता है। —अरे, यह क्या, तुम्हारा दर्द फिर बढ़ उठा क्या ?'

आदित्य उद्विग्न हो उठा। नीरजा ने सूखे गले से कहा : 'कुछ नहीं हुआ। मेरे लिये इतने बेचैन होने की ज़रूरत नहीं।'

पति जब उठने-उठने का विचार कर रहा था, वह बोल उठी : 'हमारे ब्याह के बाद ही उस आर्किड्-घर का प्रथम प्रारंभ हुआ था,—भूल तो नहीं गए यह बात ? इसके बाद दिन-पर-दिन हम दोनोंने मिलकर उस घर को

सजाया-सँवारा है। उसे बर्बाद होते देख तुम्हारे जी में ज़रा भी कसक नहीं होती ?'

आदित्य चकित होकर बोला : 'यह क्या कहती हो ! बर्बाद होने देने का मेरा शौक़ तुमने कहाँ देख लिया ?'

नीरजा उत्तेजित होकर बोली : 'सरला क्या जाने बागिया का काम !'

'कहती क्या हो ! सरला नहीं जानती ? मैं मौसाजी के यहाँ पला-बढ़ा हूँ और वही मौसाजी हुए सरला के बड़े-चाचा। तुम्हें तो मालूम ही है, उन्हींके बाग़ में मैंने बाग़बानी का ककहरा सीखा है। बड़े-चाचा कहा करते, फुलवारी का काम स्त्रियों का ही है ; उनका और दूसरा काम है गाय दुहना।—बड़े-चाचाके सब कामों में सरला उनकी संगिनी थी।'

'और तुम थे संगी।'

'और नहीं तो क्या ! लेकिन मुझे तो कालेज की पढ़ाई-लिखाई करनी होती थी इसलिये उतना व़क्त नहीं दे पाया। सरला को मौसाजी ख़ुद ही पढ़ाया करते थे।'

'उसी बाग़ीचे को लेकर तुम्हारे मौसाजी का सत्यानास हो गया ! उस लड़की के लच्छन ही ऐसे हैं। मुझे तो

इसीलिये डर लगा करता है। देखो न, खुले मैदान की तरह चौड़ा कपार है, घोड़े की तरह उचकती चाल। लड़कियों की ऐसी पुरुषोचित बुद्धि भली नहीं होती। उससे अमङ्गल होता है।'

'तुम्हें आज हुआ क्या है, कहो तो नीरू? कैसी बातें कर रही हो तुम? हमारे मौसाजी तो बाग़बानी करना ही जानते थे, रोज़गार नहीं। फूलों की खेती-बाड़ी में वे अद्वितीय थे; अपना नुक़सान करके बाग़ को सजाने में भी उनकी कोई जोड़ नहीं थी। सभीके निकट उन्होंने नाम पाया, मगर दाम नहीं। बाग़बानी के लिये मुझे उन्होंने जब मूलधन का रुपया दिया था तब क्या मैं जानता था कि उनकी तहवील डूबने ही वाली है। मेरी एकमात्र सान्त्वना यही है कि उनके अवसान से पहले ही मैंने सब कुछ चुका दिया।'

सरला नारंगी का रस ले आई। नीरजा बोली: 'वहीं रख जाओ।'—सरला रखकर चली गई। पात्र पड़ा ही रहा, नीरजा ने छुआ तक नहीं।

'सरला से तुमने ब्याह क्यों नहीं किया?'

'सुनो भला! ब्याह का ख़्याल कभी मन में ही नहीं आया।'

'मन में ही नहीं आया! यही है शायद तुम्हारी कवि-कल्पना!'

'जीवन में कवि-कल्पना की बला ही पहली बार उस दिन सिर पर सवार हुई जिस दिन तुम्हें देखा। उसके पहले हम दोनों जंगलियों ने जंगल की छाया में दिन काटे थे। अपने आपको हम भूले हुए थे। अगर आजकल की सभ्यता में पला होता तो क्या होता, कह नहीं सकता।'

'क्यों, सभ्यता का क्या क़ुसूर है?'

'आज की सभ्यता दुःशासन के समान हृदय का चीर-हरण करना चाहती है। आखों में अँगुली डालकर अनुभव से पूर्व ही बच्चों को सयाना कर देती है। ख़ुशबू का इशारा उसके लिये बहुत बारीक़ चीज़ हो गई है, वह उसका पता लगाया करता है पँखुड़ियों की चीर-फाड़ करके।'

'सरला देखने में तो बुरी नहीं।'

'सरला को मैं सरला के रूप में ही जानता था। वह देखने में भली है या बुरी—यह तत्त्व बिल्कुल ही अनावश्यक था।'

'अच्छा, सच बताना, उसे तुम प्यार नहीं करते थे?'

'जरूर करता था। मैं क्या कोई जड़ पदार्थ हूँ जो

प्यार नहीं करूगा ? मौसाजी का लड़का रंगून में बैरिस्टरी करता था, उसके लिये उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। सरला उनके बाग़ को लेकर ही जीवन बिता दे, यही उनकी ज़िंदगी की साध थी। उनका तो यहाँ तक विश्वास था कि वह बाग़ीचा ही उसके समस्त मन-प्राण पर अधिकार कर रखेगा; उसको ब्याह करने की ग़रज़ ही नहीं होगी। पीछे मौसाजी चल बसे; सरला अनाथा हो गई; बाग़ साहूकारों के हाथ बिक गया। उस दिन मेरी छाती फटी जा रही थी—क्या तुम जानती नहीं? सरला प्यार करने की चीज़ है, उसे प्यार नहीं करूँगा? ख़ूब याद है, एक दिन सरला का मुँह हँसी-ख़ुशी से छलका करता था,—लगता था जैसे पंछी की उड़ान उसके पैरों में आ समाई हो। आज चलती है वह छाती-भर बोझ ढोए-ढोए, तब भी टूट नहीं पड़ी। एक दिन भी उसने—यहाँ तक कि मेरे निकट भी—लंबी साँस नहीं छोड़ी, अपनेको इतनी भी फ़ुरसत नहीं दी।'

नीरजा आदित्य की बात दबाती हुई बोली: 'अजी रुको भी, बहुत सुन चुकी हूँ तुमसे उसकी बातें। और बखानने की ज़रूरत नहीं। असाधारण लड़की है! इसीसे तो कहती हूँ उसे उसी बारासत गर्ल्स-स्कूल की हेड-

मिस्ट्रेस बन जाने दो। वे लोग तो कितनी बार आरज़ू-मिन्नत कर गए हैं।'

'बारासत गर्ल्स-स्कूल? क्यों, अन्दमान भी तो है!'

'नहीं, हँसी नहीं। सरला को बगिया का जो काम देना चाहो दे सकते हो, लेकिन उस आर्किड्-घर का काम नहीं दे सकोगे।'

'क्यों, हुआ क्या?'

'मैं तुमसे कहे रखती हूँ—सरला को आर्किड् को ठीक समझ ही नहीं है।'

'तो मैं भी तुमसे कहे रखता हूँ, मेरी अपेक्षा सरला .ज्यादा समझती है। मौसाजी का तो ख़ास शौक़ ही था आर्किड् में। उन्होंने अपने आदमी भेजकर सेलिबिस से, जावा से, यहाँ तक कि चीन से आर्किड् मँगवाए थे। उनकी क़ीमत करने लायक़ आदमी भी उन दिनों नहीं थे!'

यह बात नीरजा की जानी हुई है, इसीसे वह और भी असह्य है।

'अच्छा, अच्छा, .खूब है, बहुत .खूब है! वह मेरी बनिस्बत कहीं .ज्यादा अच्छा समझती है यही सही, यहाँ तक कि तुमसे भी .ज्यादा। सो होने दो। लेकिन फिर भी कहती हूँ, वह आर्किड्-घर सिर्फ़ तुम्हारा और मेरा

है, वहाँ सरला का कोई अधिकार नहीं। अगर जी न माने तो अपनी सारी फुलवारी उसीको सौंप दो ; लेकिन बहुत तनिक-सा ऐसा कुछ रख छोड़ो जो सिर्फ़ मुझे ही उत्सर्ग किया हुआ हो। इतने दिन बाद कम-से-कम इतना-सा दावा तो कर ही सकती हूँ। भाग्य के फेर से आज अगर बिछौने पर ही पड़ी हूँ तो क्या इसीलिये—'

नीरजा से बात पूरी करते नहीं बनी, तकिये में मुँह गड़ाकर अशांत होकर वह सिसकने लगी।

आदित्य स्तंभित हो गया। वह जैसे इतने दिनों तक बिल्कुल स्वप्न में ही चलता आ रहा था, आज सहसा ठोकर खाकर चौंक उठा। यह क्या मामला है! समझ गया, यह रुलाई बहुत-बहुत दिनों की संचित है ; वेदना का बवंडर नीरजा के भीतर-ही-भीतर दिनों-दिन शक्ति-संचय कर रहा था, किन्तु आदित्य पल भर के लिये भी जान नहीं पाया। अपने भोलेपन में तो उसने यहाँ तक भी सोचा था कि सरला बगिया की सेवा-जतन कर रही है सो इससे नीरजा प्रसन्न ही होगी। ख़ासकर मौसम के हिसाब से चुने हुए फूलों-द्वारा क्यारियाँ सजाने में सरला की जोड़ नहीं। आज अचानक याद

आया, एक दिन किसी प्रसंग से जब उसने यह कहते हुए सरला की प्रशंसा की थी कि कामिनी फूलों की ऐसी फबती हुई बाड़ी मैं तो नहीं लगा पाता, तो नीरजा तीव्र हँसी हँसकर बोल उठी थी : 'अजी महाशयजी, जितना उचित प्राप्य है उससे ज़्यादा देने से अंत में आदमी का नुक़सान ही होता है।'—आज आदित्य को स्मरण हुआ, पेड़-पौधों के बारे में किसी प्रकार सरला की ज़रा-सी भी भूल यदि नीरजा पकड़ पाती तो उच्च हास्य-द्वारा उसी बात को घुमा-घुमाकर मुखरित कर डालती। स्पष्ट ही याद आया, अंग्रेज़ी की पोथियों से खोज-खोजकर नीरजा अल्पपरिचित फूलों के उद्भट नाम कंठस्थ कर रखती, फिर बिल्कुल भोले आदमी की तरह सरला से पूछती और यदि सरला कहीं भूल-चूक कर बैठती तो नीरजा की हँसी का हिल्लोल जैसे थमना ही नहीं चाहता : 'बड़ी पंडिता आई हैं! कौन नहीं जानता, उसका नाम कैशिया जावानिका है! इतना तो मेरा हला माली भी बता सकता था!'

आदित्य बहुत देर तक बैठा सोचता रहा। फिर नीरजा का हाथ अपने हाथों में लेकर बोला : 'रोओ मत नीरू, बताओ क्या करूँ? तुम क्या यही

चाहती हो कि सरला को बाग़ के कामकाज में न रखा जाय ?

नीरजा ने हाथ छुड़ाकर कहा : 'मैं कुछ नहीं चाहती, कुछ भी नहीं ! बाग़ तो तुम्हारा ही है। तुम जिसे चाहो .खुशी से रख सकते हो, उसमें मेरा क्या ?'

'नीरू, तुम ऐसी बात कह सकीं ! बाग़ मेरा ही है, तुम्हारा नहीं ? हमारे बीच यह बँटवारा कब से हो गया ?'

'जब से तुम्हारे लिये विश्व का सभी कुछ अपना रहा, और मेरे लिये बचा केवल कमरे का यही एक कोना। अपने इन टूटे प्राणों को लेकर तुम्हारी उस आश्चर्यजनक सरला के सामने भला खड़ी ही किस ज़ोर से हूँगी ? मुझमें आज वह शक्ति ही कहाँ जो तुम्हारी सेवा कर सकूँ, तुम्हारी बगिया का कुछ जतन कर सकूँ ?'

'नीरू, तुमने तो .खुद ही इससे पहले कितनी बार सरला को बुलवाया है, उससे सलाह-मशविरा किया है। याद नहीं, अभी कुछ ही बरस पहले तुम दोनोंने मिलकर चकोतरा नीबू के साथ कलंबा नीबू की क़लमें बाँधी थी— मुझे चकित कर देने के लिये ?'

'उस समय तो उसे ऐसा .गुरूर नहीं था। विधाता ने मेरी ही तरफ़ आज अँधियारा कर दिया, तभी तो तुम

रह-रहकर आविष्कार कर पाते हो : वह इतना जानती है, वह उतना जानती है, आर्किड की पहचान में मैं उसकी बराबरी नहीं कर सकती ! उन दिनों तो ये सब बातें कभी सुनने में नहीं आईं । तब आज मेरे इन अभागे दिनों में क्यों तुलना करने आए हो हम दोनोंकी ? आज मैं उसका मुक़ाबला कर ही कैसे सकती हूँ ? मापजोख में बराबर उतरूँगी ही कैसे ?'

'नीरू, आज तुम्हारे निकट यह जो सब सुन रहा हूँ उसके लिये तनिक भी तैयार नहीं था। मालूम होता है जैसे ये मेरी नीरू की बातें नहीं, जैसे यह कोई और है !'

'नहीं जी नहीं, यह तुम्हारी वही नीरू है। उसकी बात तुम इतने दिनों में भी नहीं समझ सके—यही तो उसकी सबसे बड़ी सज़ा है। ब्याह के बाद जिस दिन मैंने जाना कि यह बगिया तुम्हें प्राणों-जैसी प्यारी है, उसी दिन से उसमें और अपनेमें कोई भेद नहीं रखा—तनिक-सा भी नहीं। नहीं तो तुम्हारी बगिया के साथ मेरी भयंकर रार ठन जाती। उसे मैं सह ही नहीं पाती ; वह मेरी सौत बन जाती। तुम्हें तो मालूम है मेरी रात-दिन की वह साधना। जानते तो हो मैंने किस तरह उसे अपने में

घुला-मिला रखा है, किस तरह उसके साथ बिल्कुल एक हो गई हूँ ?'

'जानता क्यों नहीं ? मेरे सब कुछ को अपनाकर ही तो तुम हो।'

'छोड़ो उन सब बातों को। आज मैंने देखा, उसी बगिया में अनायास ही कोई अजनबी घुस आया है। किसीको तनिक-सी भी व्यथा नहीं हुई। मेरी देह को चीर डालने की बात क्या कभी तुम्हारे ध्यान में आ सकती थी,—किसी औरके प्राणों का उसमें संचार करने के लिये ? मेरी वह फुलवारी क्या मेरी देह नहीं ? तुम्हारी जगह पर अगर मैं होती तो क्या ऐसा कर सकती थी ?'

'क्या करतीं तुम ?'

'बताऊँ क्या करती ? बाग़ीचा शायद चौपट हो जाता, रोज़गार हो जाता दिवालिया, एक की जगह दस माली रखती, लेकिन हर्गिज़ नहीं आने देती किसी ग़ैर लड़की को—ख़ासकर उसे जिसे यह ग़ुरूर हो कि वह बाग़ का काम मुझसे भी अच्छा जानता है। उसके इसी ग़ुरूर से तुम मेरा प्रतिदिन अपमान करोगे—आज जब मैं मरने चली हूँ, जब अपनी ताक़त का सबूत देने का मेरे पास कोई उपाय नहीं ?—ऐसा क्योंकर हो सका बताऊँ ?'

'बताओ—'

'इसलिये कि तुम उसे मुझसे ज़्यादा प्यार करते हो। इतने दिन तक यह बात मुझसे छुपाए हुए थे।'

आदित्य कुछ देर तक अपने सिर के बालों में हाथ घुसाए स्तब्ध बैठा रहा, फिर विह्वल कंठ से बोला : 'नीरू, दस बरसों से तुम मुझे जानती आ रही हो—सुख में, दुःख में, नाना अवस्थाओं—नाना काम-काजों में। उसके बाद भी तुम यदि आज ऐसी बात कह सकती हो तो मैं कोई जवाब नहीं दूँगा। चल दिया! पास रहने से तुम्हारी तबीयत ख़राब होगी। फ़र्नरी के बाज़ू में जो जापानी-घर है, उसी में रहूँगा। जब मेरी ज़रूरत हो, बुलवा भेजना।'

रमेन सरला के पावों के निकट घाट की सीढ़ी पर आकर बैठ गया

५

पोखर के उस पारवाले बाँध पर चालता वृक्ष की ओट में चाँद निकल रहा है, पानी पर घनी काली छाया फैल गई है। इस ओर वासन्ती वृक्ष की नई कोंपलें शिशु की कच्ची नींद से सद्यजागी आँखों की तरह ईषत् लाल हैं, कच्चे स्वर्ण-जैसे पीले रँग के उसके फूल हैं, घन-गंध भारी होकर जम उठी है—मानो सौरभ का कुहासा हो। जुगनुओं का दल जारुल वृक्ष की डालिओं में झलक-झलक उठता है।

घाट की वेदी पर सरला स्तब्ध होकर बैठी हुई है। हवा साँस रोके है; पत्ते डोल नहीं रहे। पानी मानों काली छाया के फ्रेम में बँधा पालिश किया हुआ चाँदी का दर्पण हो।

पीछे से प्रश्न आया: 'आ सकता हूँ?'

सरला ने स्निग्ध कंठ से उत्तर दिया: 'आओ।' रमेन पावों के निकट घाट की सीढ़ी पर आकर बैठ गया। सरला व्यस्त होकर बोली: 'कहाँ बैठ गए रमेनभैया, ऊपर आओ।'

रमेन बोला: 'जानती हो, देवियों की वर्णना आरंभ

होती है पदपल्लवों से। पार्श्व में जगह रहे तो पीछे बैठूँगा। तनिक बढ़ाओ तो अपना हाथ, अभ्यर्थना शुरू करूँ विलायती रीति से।'

सरला का हाथ लेकर चूमकर बोला : 'साम्राज्ञी के योग्य अभिवादन ग्रहण करो !'

इसके बाद खड़े होकर तनिक-सी अबीर लेकर सरला के भाल पर मल दी।

'यह अब क्या है !'

'जानती नहीं, आज होली है। डाल-डाल और पात-पात पर रंगों की माया बिखर रही है। वसंत में मनुष्य की देह में तो रँग लगता नहीं, लगता है मन में। उसी रँग को बाहर प्रकाशित करना होगा, नहीं तो, वनलक्ष्मी ! अशोक-वन में तुम निर्वासित ही बनी रहोगी।'

'तुम्हारे साथ बातों का खेल खेल सकूँ, ऐसा कौशल मुझमें नहीं।'

'बातों की ज़रूरत ही कौन-सी है ? पुरुष-पक्षी ही गान करता है, तुमलोग मादा-पक्षी अगर चुपचाप सुन-भर लो तो उत्तर हो गया। अब बैठने दो पास में।'

रमेन बाज़ू से बैठ गया। बहुत देर तक दोनों ही

ख़ामोश रहे। अचानक सरला ने सवाल किया : 'रमेन भैया, जेल किस तरह जाया जाता है, इसकी सलाह दो मुझे!'

'जेल जाने के रास्ते इतने बेहिसाब हैं और आजकल इतने आसान, कि जेल किस तरह न जाया जाय यही सलाह दे सकना सबसे मुश्किल हो उठा है। इस युग में गोरे की बँसुरिया ने हम गोपियों को घर में टिकने ही नहीं दिया।'

'नहीं, मैं हँसी नहीं कर रही, ख़ूब सोचकर ही समझ पा रही हूँ कि मेरी मुक्ति वहीं है।'

'ज़रा अच्छी तरह खोलकर तो कहो मन की बात।'

'कहती हूँ सभी कुछ। सारी बात तुम्हारी समझ में आ जाती, यदि आज कहीं आदित्‌भैया का मुँह एक बार देख पाते।'

'सङ्केतों से कुछ-कुछ देख पाया हूँ।'

'आज तीसरे पहर बरामदे में अकेली बैठी हुई थी। अमेरिका से फूल-पत्तों का एक सचित्र सूचीपत्र आया है, उसीके सफ़े उलट रही थी। रोज़ तीसरे पहर साढ़े चार बजे से पहले चाय निबटाकर आदित्‌भैया मुझे पुकार लिया करते थे बगिया के काम पर। आज

देखती हूँ, अन्यमनस्क होकर यहाँ से वहाँ घूम रहे हैं; माली लोग काम किए जा रहे हैं लेकिन उस तरफ़ ख़याल ही नहीं है। एक बार ऐसा लगा जैसे मेरे बरामदे की तरफ़ आ रहे हों, फिर दुविधा में पड़कर लौट गए। आदित्भैया सख्त, लंबे डोल के आदमी हैं, तेज़ चाल, तेज़ काम, सभी तरफ़ सजग दृष्टि; कड़े मालिक हैं फिर भी मुँह पर क्षमा की हँसी खिली रहती है;— आज उसी मनुष्य की वह चाल ही नहीं रही, दृष्टि ही नहीं है बाहर की ओर, मालूम नहीं कहाँ डूब गए हैं मन के भीतर। बहुत देर बाद धीरे-धीरे पास आए। और रोज़ आते ही हाथ की घड़ी दिखलाकर कहते: 'समय हो गया।' मैं भी उठ खड़ी होती। आज यह न करके धीरे-धीरे चौकी खींचकर बाज़ू से बैठ गए। बोले: 'कैट्लाग देख रही हो शायद।'—मेरे हाथ से सूचीपत्र लेकर सफ़े उलटाने लगे। कुछ देखा हो ऐसा नहीं लगा। अचानक एक बार मेरे मुँह की तरफ़ ताका, मानो संकल्प कर लिया हो कि अब और देर न करके कुछ-न-कुछ कहना ही चाहिए। लेकिन फिर उसी समय सफ़े की तरफ़ नज़र घुमाकर बोले: 'देखा सरो, कितना बड़ा नैस्टर्शियम है!'—आवाज़ में गहरी

थकान का परिचय था। उसके बाद बहुत देर कोई बात-चीत नहीं, सिर्फ़ सफ़े उल्टाने का ही काम चलता रहा। एक बार और अचानक मेरे मुँह की तरफ़ ताका, फिर उसीके साथ झप् से किताब बंद करके मेरी गोद में फेंककर उठ खड़े हुए। मैंने कहा : 'चलोगे नहीं बाग़ में ?'—बोले : 'ना भइ, बाहर जाना होगा, काम है'—कहते ही एक झटके से जैसे अपने को छीनकर ले गए।

'आदित्‌भैया तुमसे क्या कहने आए थे, क्या अन्दाज़ है तुम्हारा ?'

'कहने आए होंगे : तुम्हारा एक बाग़ पहले ही उजड़ चुका है, अबकी हुक्म आया है, तुम्हारी क़िस्मत से एक बाग़ और उजड़ेगा।'

'अगर ऐसा ही हो, सरो, तब जेल जाने की मेरी स्वाधीनता तो गई।'

सरला म्लान हँसी हँसकर बोली : 'तुम्हारी वह राह क्या मेरे बंद किए बंद होगी ? सम्राट्-बहादुर ख़ुद उसे बिल्कुल खुलासा रखेंगे।'

'तुम टहनी से टूटी हुई कली की तरह पड़ी रहोगी रास्ते पर और मैं हथकड़ियाँ झनझनाता हुआ सबकी

आँखें चौंधियाता जेल का रास्ता पकड़ूँगा—यह भी भला कभी हुआ है! तब तो अभी से मुझे इसी उम्र में .खूब भलामानुस बनना सीखना पड़ेगा।'

'क्या करोगे?'

'तुम्हारे अशुभ-ग्रह के साथ युद्ध की घोषणा कर दूँगा। जन्म-पत्री से उसे निकाल-बाहर करूँगा। उसके बाद .खूब लंबी छुट्टी मिलेगी—यहाँ तक कि काले-पानी-पार तक की!'

'तुम्हारे पास मैं अपना कुछ भी छुपाना नहीं जानती। कुछ दिनों से एक बात मेरे निकट .खूब साफ़ हो चली है, सो आज तुमसे कहूँगी, कुछ .ख्याल न करना।'

'न कहने पर ही ख्याल करूँगा।'

'तब सुनो। बचपन से ही आदित्भैया के साथ-साथ बड़ी हुई हूँ। भाई-बहन की तरह नहीं, दो भाइयों की तरह। दोनोंने अपने हाथों एक-दूसरे की बग़ल से मिट्टी खोदी है, पेड़ काटे हैं। जब बड़ी चाची और माँ दो-तीन दिन आगे-पीछे चल बसीं, तब मेरी उम्र रही होगी छः की। बाबूजी की मृत्यु इसीके दो साल बाद हुई। बड़े-चाचा को यह .खूब ही बड़ी साध थी कि मैं ही उनके बाग़ को अपने प्राण देकर भी बचा रखूँगी। उसी तरह उन्होंने

मुझे गढ़ा भी था। कभी किसीपर भी अविश्वास करना उन्हें नहीं आया। जिन मित्रों को उन्होंने रुपये क़र्ज़ दिए थे वे लोग शोध करके बगिया को दायमुक्त कर देंगे, इसमें उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था। सो शोध किया सिर्फ़ आदित्‌भैया ने, और किसीने नहीं। यह इतिहास शायद तुम्हें कुछ-कुछ मालूम है लेकिन तब भी आज सारी बातें बिल्कुल शुरू से ही कहने का जी हो रहा है।'

'मुझे सभी कुछ बिल्कुल नया लग रहा है।'

'इसके बाद तुम्हें तो मालूम ही है, सब कुछ डूब गया। जब बाढ़ से खींच-तानकर मुझे ज़मीन पर जगह दी गई, तब एक बार फिर मेरे भाग्य ने मुझे आदित्‌भैया की बग़ल में लाकर खड़ा कर दिया। वही पहले-जैसे ही उनसे मिली—दो भाई, दो मित्रों की तरह। उसके बाद से उनके आश्रय में हूँ—यह बात जिस तरह सच है, वैसे ही उन्हें भी आश्रय दिए हुए हूँ—यह भी सच है। परिमाण में मेरी तरफ़ से तनिक भी कमी नहीं हुई यह मैं ज़ोर देकर कहूँगी। इसी कारण अपनी ओर से संकोच करने की मुझे लेशमात्र भी ज़रूरत नहीं हुई। इससे पहले जब हमलोग एक साथ थे, उसी समय की उम्र लिए हुए ही मानो मैं फिर उनसे मिली—ठीक

वही सम्बन्ध लिए हुए। और बराबर इसी तरह दिन कट भी जाते—लेकिन ज़्यादा कहकर ही क्या होगा ?'

'बात पूरी कर डालो।'

'अचानक मुझे धक्का देकर क्यों जता दिया गया कि मैं अब बड़ी हो उठी हूँ ! जिन पुराने दिनों की ओट में काम-काज किया था उन दिनों का आवरण पल भर में ही जाने-कहाँ उड़ गया। तुम्हें अवश्य सभी कुछ मालूम है रमेनभैया, मेरा कुछ भी ढका नहीं होता तुम्हारी दृष्टि से। अपने ऊपर भाभी का कोप देखकर शुरू-शुरू में बहुत आश्चर्य हुआ था। तब कुछ भी समझ न पाई थी। इतने दिन अपने ऊपर नज़र ही नहीं पड़ी। आज भाभी के विराग की अग्नि की आभा में अपने को देख पाई—अपने ही निकट पकड़ाई दे गई ! मेरी बात समझ रहे हो न ?'

'तुम्हारे बचपन का अतल-डूबा प्यार हिल-डुलकर ऊपरी सतह पर उतरा आया है।'

'मैं करूँ भी तो क्या, कहो तो भला ? अपने ही से किस तरह भागूँ !'—कहते-कहते सरला ने रमेन का हाथ दबा रखा।

रमेन चुप रहा। वह फिर बोली : 'जब तक यहाँ रहूँगी, मेरा अन्याय बढ़ता ही जाएगा।'

'अन्याय किसपर ?'

'भाभी पर।'

'देखो सरला, मैं ये सब पोथियों की बातें नहीं मानता। किस सत्य के माप से दावे का हिसाब स्थिर करोगी तुम ? तुम दोनोंका मिलन कितने काल का है ! तब कहाँ थीं भाभी ?'

'यह क्या कह रहे हो रमेनभैया ! अपनी इच्छा को दुहाई देकर इतनी बड़ी माँग कैसे की जा सकती है ? फिर आदित्भैया की बात भी तो सोचनी होगी।'

'ज़रूर सोचनी होगी। तुम्हारा क्या यह ख़याल है कि जिस आघात ने तुम्हें चौंका दिया है, वही आघात उन्हें नहीं लगा ?'—

'रमेन हो क्या ?'—पीछे से सुनाई पड़ा।

'हाँ भैया।'—कहकर रमेन उठ खड़ा हुआ।

'तुम्हारी भाभी ने तुम्हें बुलवा भेजा है, आया अभी आकर कह गई।'

रमेन चला गया, सरला ने भी उसी समय उठकर जाने का उपक्रम किया।

आदित्य बोला : 'जाना मत सरो, तनिक बैठो।'—आदित्य का मुँह देखकर सरला की छाती फट जाना चाहती है। वही अविश्राम-कर्म्मरत, आत्मविस्मृत, बड़े डौल का आदमी इतनी देर से जैसे लहरों की चपेट खानेवाली चकराती-टकराती हुई नाव के समान भटक रहा था।

आदित्य ने कहा : 'हम दोनोंने इस संसार में बिल्कुल एक होकर जीवन आरंभ किया था। हमारा मेल इतना सहज है कि इसमें कहीं किसी भी कारण से कोई भेद घट सकता है, यह सोचना भी असंभव है। है न सरो ?'

'अंकुर में जो एक होता है वही बढ़ने पर अलग हो जाता है—यह बात भी तो बिना माने नहीं रहा जा सकता, आदित्भैया !'

'वह अलगाव तो बाहर की चीज़ है, केवल आँखों को दीख पड़नेवाला अलगाव। अंतर में प्राणों के तो टुकड़े नहीं होते। आज तुम्हें मेरे पास से दूर हटा ले जाने का धक्का आया है। मुझे यह इतनी पीड़ा देगा, यह कभी सोच भी नहीं सकता था। सरो, क्या तुम जानती हो कि हमलोगों पर अचानक कैसा धक्का आया है ?'

'जानती हूँ भाई, तुम्हारे जानने के पहले से ही।'

'सह सकोगी, सरो?'

'सहना ही होगा।'

'सोच रहा हूँ, तुमलोगों की सहन-शक्ति क्या हमलोगों से ज्यादा होती है?'

'तुमलोग ठहरे पुरुष, दुःख के साथ लड़ाई करते हो, नारी युग-युग से केवल सहती ही आ रही है। आँखों में पानी और हृदय में धीरज—इन्हें छोड़ उसका और तो कोई संबल नहीं।'

'तुम्हें मुझसे कोई छीनकर ले जाए, यह मैं नहीं होने दूंगा—कभी नहीं। यह अन्याय है, निठुर अन्याय है!'—यह कहते हुए आकाश में मुट्ठी तानकर आदित्य जाने-किस अदृश्य शत्रु के साथ युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गया।

सरला आदित्य का हाथ गोद में खींचकर उसपर हौले-हौले अपना हाथ फेरने लगी, और जैसे अपने आप ही से बोलने लगी : 'न्याय-अन्याय की बात नहीं है भाई! संबंध का बंधन जब प्रकट हो जाता है तब उसकी टीस बहुत लोगों के भीतर होने लगती है, बहुत जगह से तनाव-खिंचाव पड़ने लगता है। भला किसको दोष होगे?'

'तुम सहन कर सकोगी यह मैं जानता हूँ। एक रोज़ की बात याद आ रही है। *कितने लंबे बाल थे* तुम्हारे—अब भी वैसे ही हैं—मन में गर्व था तुम्हें उन बालों का। सभी तुम्हारे उस गर्व को बढ़ावा देते थे। एक दिन तुमसे हुआ झगड़ा। दोपहर को तुम तकिए पर सारे केश फैलाए सो रही थीं। मैंने क़ैंची लेकर लगभग आधे-हाथ लम्बे बाल काट डाले। तुम तत्काल जागकर खड़ी हो गईं—तुम्हारी वे सघन काली आँखें और भी काली हो उठीं। केवल इतना ही कहा तुमने : 'सोचते हो मुझे छकाओगे?'—और कहते ही मुझसे क़ैंची छुड़ाकर रक-रक करके गर्दन तक के सारे बाल तुमने काट डाले। मौसाजी तो तुम्हें देखकर चकित हो गए, बोले : 'यह क्या कांड किया!'—तुमने शांत मुख से अनायास ही कहा : 'बड़ी गरमी लगा करती थी।'—उन्होंने भी तनिक हँसकर सहज ही मान लिया। कुछ भी पूछा नहीं, डाँटा नहीं, सिर्फ़ क़ैंची लेकर केशों को प्यार से बराबर छाँट दिया। आख़िर तुम्हारे ही तो बड़े-चाचा थे!'

सरलाने हँसकर कहा : 'तुम्हारी बुद्धि की भी बलिहारी है! तुम क्या यह समझते हो कि यह मेरी क्षमा का

परिचय है ? तनिक भी नहीं। उस दिन जितना तुमने मुझे छकाया, उससे कहीं अधिक मैंने तुम्हें पीड़ित किया। बताओ ठीक कह रही हूँ या नहीं ?'

'बिल्कुल ठीक। उन कटे हुए केशों को देखकर मुझे सिर्फ़ रोना ही बाक़ी रहा था। उसके दूसरे दिन मारे शर्म के तुम्हें मुँह ही नहीं दिखा सका। अपने पढ़ने के कमरे में चुपचाप दुबका बैठा था। तुम कमरे में आते ही बिना कुछ कहे-सुने बाग़ के काम-काज में मुझे फिर खींच ले गईं, जैसे कुछ हुआ ही न हो। और भी एक दिन की बात याद आती है, वही जिस दिन फागुन महीने में अचानक असमय-तूफ़ान मेरे सोने के कमरे का छप्पर उड़ा ले गया था और तब तुम आकर—'

'छोड़ो उस बात को, कहने की ज़रूरत नहीं आदित्भैया !'— कहकर सरला ने लंबी साँस छोड़ी : 'वे दिन अब नहीं लौटेंगे।'—यह कहते हुए वह चटपट उठ खड़ी हुई।

आदित्य ने व्याकुल होकर सरला का हाथ दबाकर कहा : 'नहीं, जाना मत, अभी जाना मत, कभी जाने का समय आएगा, तब—' कहते-कहते आदित्य उत्तेजित होकर बोल उठा : 'लेकिन कभी भी क्यों आएगा जाने का समय !

कौन-सा अपराध हुआ है ? ईर्ष्या ! आज दस बरस घर-गिरस्ती करने के बाद मेरी जाँच हुई—उसीका यह नतीजा ! क्या लेकर ईर्ष्या ? तब तो फिर उन तेईस बरसों का इतिहास मिटा डालना होगा—जब तुम्हारे साथ पहले-पहल मेरी जान-पहचान हुई थी ?'

'तेईस बरसों की बात नहीं कह सकती भाई, लेकिन तेईस बरसों की इस अंतिम वेला में क्या तुम सचमुच ही कह सकते हो कि ईर्ष्या का कोई कारण घटित नहीं हुआ ? सच्ची बात तो कहनी ही होगी, अपनेको भुला रखने से क्या लाभ ? मेरे और तुम्हारे बीच कोई भी बात तनिक भी धुँधली न रहे !'

आदित्य कुछ देर स्तब्ध बैठा रहा, फिर बोल उठा : 'धुँधला रह ही कहाँ गया कुछ ! भीतर ही भीतर मैं समझ गया हूँ कि तुम्हारे बिना मेरी दुनिया व्यर्थ हो जाएगी। जीवन की प्रथम वेला में तुम्हें जिनसे पाया, उन्हें छोड़ और कोई तुम्हें मुझसे छीन नहीं सकेगा।'

'बोलो मत आदित् भैया, दुःख और मत बढ़ाओ। तनिक स्थिर होकर सोचने दो।'

'उस सोच-विचार को लेकर पीछे की ओर तो जाया नहीं जा सकता। मौसाजी की गोद में हम दोनोंने

जो जीवन आरम्भ किया था, वह तो बिल्कुल बिना सोचे-विचारे था। आज क्या हमारे उन दिनों को खुरपी से उखाड़कर फेंक सकोगी? तुम्हारी बात नहीं कह सकता सरो! मगर मेरी तो ताक़त नहीं।'

'पैरों पड़ती हूँ, मुझे दुर्बल न करो।—दुर्गम मत करो उद्धार का रास्ता!'

आदित्य ने सरला का हाथ अपने हाथों में दबाकर कहा: 'उद्धार की राह है ही नहीं, राह मैं रखूँगा भी नहीं। प्यार करता हूँ तुम्हें! यह बात आज इतने सहज भाव से, सत्य भाव से कह पा रहा हूँ कि इससे मेरी ही छाती फूल उठती है। जो फूल तेईस बरस तक कली में छुपा हुआ था वही आज दैवकृपा से खिल गया है। मैं कहता हूँ, उसे दबाकर रखना कायरता होगी, अधर्म होगा!'

'चुप, चुप, और मत कहो। आज रात-भर के लिये मुझे माफ़ करो, माफ़ करो मुझे!'

'सरो, मैं ही तुम्हारा कृपापात्र हूँ, जीवन के आखिरी दिन तक मैं ही तुम्हारी क्षमा के योग्य बना रहूँगा। मैं क्यों अंधा था? मैंने क्यों नहीं पहचाना तुम्हें? क्यों भूल करके ब्याह करने गया? तुमने तो नहीं किया,

कितने पात्र इस इच्छा से तुम्हारे पास आए—सो तो मुझे मालूम है।'

'बड़े चाचा ने मुझे अपने बाग़ के काम पर उत्सर्ग कर दिया था, नहीं तो शायद—'

'नहीं नहीं, तुम्हारे मन की गहराई में तुम्हारा सत्य उज्ज्वल था। अनजाने में भी तुमने उससे अपने-आपको बाँध रखा था। मुझे तुमने क्यों सचेत नहीं कर दिया? हमारे रास्ते अलग-अलग हुए ही क्योंकर?'

'छोड़ो, छोड़ो उसे, जिसे मानना ही पड़ेगा उसे न मानने के लिये किसके साथ झगड़ रहे हो? क्या होगा झूठमूठ छटपटाने से? कल दिन में जैसे भी होगा, कोई रास्ता तय कर लिया जायगा।'

'अच्छा, चुप हुआ जाता हूँ। लेकिन ऐसी चाँदनी रात में मेरी ओर से तुम्हारे कानों-कान कुछ कह सके—ऐसे किसीको छोड़ जाऊँगा तुम्हारे पास!'

बाग़ में काम करते समय आदित्य की कमर में एक झोली बँधी रहती थी, कुछ-न-कुछ संग्रह करने की ज़रूरत होती ही रहती थी। उसी झोली से उसने एक गुच्छे में गुँथे हुए पाँच नागकेसर के फूल निकाले। कहा: 'मुझे मालूम है तुम्हें नागकेसर प्रिय है। तुम्हारे

कंधे पर पड़े हुए उस आँचल में खोंस दूँ? यह रही सेफ्टीपिन।'

सरला ने आपत्ति नहीं की। आदित्य ने ख़ूब समय लगाकर धीरे-धीरे फूल लगा दिए। सरला उठ खड़ी हुई। दोनों हाथ पकड़कर आदित्य उसके मुँह की तरफ़ ताकता रहा, जिस तरह ताके हुए था आकाश का चाँद। कहा: 'कैसी आश्चर्यजनक हो तुम सरो, कैसी अद्भुत!'

सरला हाथ छीनकर भाग गई। आदित्य ने अनुसरण नहीं किया, जब तक दिखाई पड़ी, चुपचाप खड़े देखा किया। फिर बैठ गया घाट की उसी वेदी पर। नौकर ने आकर ख़बर दी: 'खाना तैयार है।'—आदित्य बोला: 'आज नहीं खाऊँगा।'

६

रमेन ने द्वार के पास आकर पूछा : 'मुझे याद किया था भाभी ?'—नीरजा ने रुँधे हुए गले को साफ़ करके उत्तर दिया : 'आओ ।'

घर की सारी रोशनी बुझी हुई है। खिड़कियाँ खुली हैं, चाँदनी आकर बिखर गई है बिछौने पर, नीरजा के मुख पर और सिरहाने के पास—आदित्य के दिए हुए उसी लैवर्नम फूल के गुच्छे पर। बाक़ी सभी कुछ अस्पष्ट है। तकिए से टिककर नीरजा आधी-बैठी हुई अवस्था में है। देख रही है खिड़की से बाहर की ओर। उस तरफ़ आर्किड्-घर के उस पार सुपारी-वृक्षों की क़तार दिखाई पड़ रही है। अभी-अभी हवा कुछ जागी है, पत्ते डोल उठे हैं, आम के बौर की महक भीतर फैल रही है। कहीं बहुत दूर से क्षीण स्वर आ रहा है ढोलक का और गानों का,—गाड़ीवानों के मुहल्ले में होली जमी है। फ़र्श पर पड़ी हुई है मलाई की बरफ़ी और थोड़ी-सी अबीर—दरवान भेंट दे गया है। रोगी के विश्राम-भंग के भय से आज सारा घर निस्तब्ध है। किसी एक पेड़ से किसी दूसरे पेड़ की ओर

'पी-कहाँ' का उत्तर-प्रत्युत्तर चल रहा है—कोई भी हार मानने को राज़ी नहीं। रमेन मोढ़ा खींचकर बिछौने के पास बैठ गया। कहीं रुलाई न फूट पड़े इसी भय से बहुत देर तक नीरजा कुछ भी नहीं बोली। उसके ओंठ फड़क रहे थे, कंठ के निकट ही वेदना का तूफ़ान जैसे ऐंठ-ऐंठकर खिंच रहा था। थोड़ी ही देर में उसने अपने को सँभाल लिया, लैवर्नम गुच्छ के दो झरे हुए फूल उसकी मुट्ठी के भीतर हो कुचल गए। फिर बिना कुछ बोले रमेन के हाथों एक चिट्ठी थमा दी। चिट्ठी आदित्य की लिखी हुई थी। इबारत इस तरह थी :

'इतने दिनों के परिचय के बाद आज सहसा देखा गया कि मेरी निष्ठा पर संदेह करना भी तुम्हारे लिये संभव हुआ ! इसे लेकर बहस करना मुझे लज्जाजनक मालूम होता है। तुम्हारे मन की इस मौजूदा हालत में मेरी सभी बातें, सभी काम तुम्हें उल्टे जान पड़ेंगे। और वह अकारण पीड़न तुम्हारे दुर्बल शरीर को प्रति पल आहत करेगा। मेरा दूर ही रहना अच्छा है जब तक कि तुम्हारा चित्त स्वस्थ न हो जाए। यह भी समझ गया कि सरला को यहाँ से विदा कर दूँ, यही तुम्हारी इच्छा है। शायद करना भी पड़ेगा—सोचकर देखा, इसके

सिवा और कोई रास्ता भी नहीं। तब भी इतना कह रक्खूँ कि मेरी शिक्षा-दीक्षा-उन्नति सभी कुछ सरला के बड़े चाचा के प्रसाद से ही हुई है; मेरे जीवन में उन्होंने ही सार्थकता का पथ दिखलाया था। उन्हींके स्नेह की धन—सरला—आज सब कुछ खोकर निःसहाय हो गई है। आज उसे अगर मझधार में बहा दूँ तो अधर्म होगा। तुम्हारे प्रति प्रेम की ख़ातिर भी ऐसा नहीं कर पाऊँगा।

'ख़ूब सोचकर मैंने स्थिर किया है, अपने रोज़गार में एक नया विभाग खोलूँगा, फल-सब्ज़ी आदि के बीज तैयार करने का विभाग। मानिकतल्ले में घर-समेत ज़मीन मिल सकेगी। वहीं इसी काम पर सरला को लगा दूँगा। इसे आरंभ कर सकने योग्य नक़द रुपये मेरे हाथ में नहीं हैं। अपना यह बगियावाला मकान गिरवी रखकर रुपये उठाने होंगे। इस प्रस्ताव पर नाराज़ न होना, यही मेरा एकान्त अनुरोध है। स्मरण रखना, सरला के बड़े चाचा ने हमारे इस बाग़ के लिये मुझे बिना-सूद मूलधन उधार दिया था, सुना है उसका भी कुछ अंश उन्हें मेरी ख़ातिर ख़ुद क़र्ज़ लेकर पूरा करना पड़ा था। केवल इतना ही नहीं, काम शुरू करने लायक़ बीज, क़लम, दुर्लभ फूलों के रोपे, आर्किड्, घास काटने

की मशीन और अन्याय अनेक यंत्र उन्होंने दान किए थे। इतना बड़ा सुयोग यदि वे न देते तो आज तीस रुपये के किराए के घर में रहकर ज़िंदगी भर क्लर्की करनी होती, तुम्हारे साथ विवाह भी नहीं घटित होता भाग्य में। तुम्हारे साथ बातचीत होने के बाद से बार-बार यही प्रश्न मेरे मन में उठता रहा कि क्या मैंने सरला को आश्रय दिया है या सरला ने ही मुझे आश्रय दिया है? यह सीधी-सी बात भूल ही गया था, तुम्हीं ने आज याद दिला दी। अब तुम्हें भी उसे याद रखना होगा। यह कभी मत सोचना कि सरला मेरा गलग्रह है। उनलोगों का ऋण कभी चुका नहीं पाऊँगा ; मुझपर उसके दावे का भी कभी अंत नहीं होगा। तुम्हारे साथ कभी उसका भेंट न हो यह कोशिश मुझे भूलेगी नहीं। लेकिन मेरे साथ उसका संबंध टूटनेवाला नहीं, यह बात आज जिस तरह समझ पाया हूँ, पहले कभी नहीं समझ पाया। सारी बातें कह नहीं सका. मेरा दुःख आज कहने-सुनने के अतीत हो उठा है। यदि अनुमान से समझ सको तब तो समझो, नहीं तो जीवन में यही पहली वेदना है जो तुम्हारे निकट अव्यक्त हो रह गई।"—

रमेन ने दो बार चिट्ठी पढ़ डाली। पढ़कर चुप रह

गया। नीरजा व्याकुल स्वर में बोली : 'कुछ कहो भी बाबू !'

रमेन ने तब भी कोई उत्तर नहीं दिया।

नीरजा बिछौने पर लोट गई, तकिए पर सिर ठोक-ठोक कर कहने लगी : 'अन्याय किया है, मैंने अन्याय किया है। किन्तु क्या तुम लोग कोई यह नहीं समझ सकते कि किसलिये मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है ?'

'यह क्या कर रही हो भाभी ! शांत होओ, ऐसे में तुम्हारा शरीर टूट जाएगा।'

'इसी टूटे शरीर ने ही तो मेरा भाग्य तोड़ा है—इसके लिये ममता क्योंकर ? उनपर मेरा यह अविश्वास—यह कहाँ से आया ? यह जो अक्षम जीवन है, इसे लेकर मुझे अपने-आप पर ही अविश्वास है। उनकी वह नीरू आज है ही कहाँ जिसे वे कभी कहते 'मालिनी' तो कभी 'वनलक्ष्मी' ! आज किसने छीन लिया उसका उपवन ? मेरा क्या एक ही नाम था ? जिस दिन काम निबटाकर लौटते हुए उन्हें देर होती, मैं बैठी ही रहती उनका भोजन सँजोए, तब मुझे पुकारा करते 'अन्नपूर्णा' कहकर। साँझ के समय पोखर के घाट पर बैठते, छोटी-सी चाँदी की रिक़ाबी में बेले के फूलों की राशि पर मैं उनके लिये पान

सजा देती, तो हँसकर कहते 'ताम्बूलकरङ्कवाहिनी'। तब गिरस्ती के सभी परामर्श वे मुझीसे लेते हैं; मुझे नाम दिया था 'गृहसचिव' या फिर कभी 'होम सेक्रेटरी।' मैं मानो भरीपूरी नदी की तरह समुद्र में आ मिली थी, अपनी नाना शाखाएँ मैंने नाना दिशाओं में विस्तारित कर दी थीं। आज घड़ी भर में ही सभी शाखाओं का पानी सूख गया—पथरीला तल बाहर निकल आया!'

'भाभी, तुम फिर स्वस्थ हो जाओगी, अपना आसन फिर अधिकृत करोगी—पूर्णशक्ति लेकर।'

'झूठमूठ आस मत बँधाओ बाबू! डाक्टर क्या कहता है सो मेरे कानों तक भी पहुँचता है। इसीलिये तो इतने दिनों की सुख की गिरस्ती को इस तरह जकड़कर पकड़ रखने के लिये मेरी निराशा की यह कंगाली दिखाई दे रही है।'

'ज़रूरत क्या है, भाभी! इतने दिन जो तुम अपनी गिरस्ती में अपने को निःशेष ढालती आई हो, इससे बड़ी बात भला और कुछ हो सकती है? जिस तरह दिया उसी तरह पाया भी—इतना पाना भी किस नारी को मिलता है! यदि डाक्टर की बात सच ही हो, यदि जाने का दिन आ ही पहुँचे, तो जिसे ख़ूब बड़प्पन के साथ

पाया है, उसे ख़ूब बड़प्पन के साथ ही छोड़ जाओ। इतने दीर्घ दिन जिस गौरव में काटे हैं, उसी गौरव को छोटा क्योंकर करोगी! जाते हुए इस घर में अपनी अंतिम स्मृति को नवीन महिमा से मंडित कर जाना।'

'छाती फटी जाती है, बाबू, छाती फटी जाती है! अपने इतने दिनों के आनन्द को पीछे छोड़कर मुँह पर हँसी लिए हुए ही चली जा सकती थी, लेकिन किसी भी जगह तनिक सी भी ऐसी संधि न होगी जिसमें मेरे लिये विरह का एक दीवा, टिमटिमाता हुआ ही सही, जलता रहेगा? जब यह बात सोचती हूँ तो मरने को भी जी नहीं होता। वह सरला ही सब कुछ एकदम्, बेबाक़ दख़ल कर लेगी, क्या विधाता का यही निर्णय है?'

'सच्ची बात ही कहूँगा भाभी, नाराज़ न होना। तुम्हारी बात अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा। जिसे स्वयं नहीं भोग सकतीं उसे प्रसन्न मन से दान भी नहीं कर सकतीं—उन्हें, जिन्हें इतने दिन इतना कुछ दिया है? अपने प्यार पर इतनी बड़ी खरोंट छोड़ जाओगी! अपनी गिरस्ती में अपनी ही श्रद्धा का दीपक तुम आज आप ही चूरचूर करने जा रही हो? उसकी पीड़ा को तुम तो टालकर चली जाओगी लेकिन वह हमलोगों

के अंतर को सदा कचोटा करेगी। विनती करता हू, अपने सारे जीवन के दाक्षिण्य को अंतिम पल में कृपण मत बना जाना !'

नीरजा फफक-फफककर रो उठी। रमेन चुपचाप बैठा रहा, सान्त्वना देने की कोशिश भी नहीं की। रुलाई का वेग थमने पर नीरजा बिछौने पर उठकर बैठ गई। बोली : 'एक भीख माँगती हूँ बाबू !'

'हुकुम दो, भाभी !'

'सुनो, कहती हूँ। जब आँखों के पानी की बाढ़ में हृदय भीतर ही भीतर डूबने-उतराने लगाता है, तब परमहंसदेव की उस तसवीर की ओर ताकती हूँ। किंतु उनकी वाणी तो हृदय तक नहीं पहुँचती। मेरा मन बुरी तरह छोटा है। जैसे भी हो मुझे किसी गुरु का पता दो ; नहीं तो बंधन नहीं कटेंगे ; आसक्ति में ही फँसी रह जाऊँगी। जिस गिरस्ती मैंने सुख का जीवन काटा, मरकर उसी जगह युगयुगांतर तक दुःख की हवा में रोते-बिसूरते भटकती रहूँगी—इससे बचा लो मुझे, बचा लो !'

'तुम्हें तो मालूम है भाभी, शास्त्र में जिसे पाखंडी कहा जाता है, मैं वही हूँ। कुछ भी मानता-वानता

नहीं। प्रभास मित्तिर बहुत खींचातानी करके एक बार अपने गुरु के पास ले गया था मगर उलझने से पहले ही वहाँ से दो एक दौड़। जेलखाने की भी मियाद होती है, लेकिन यह बंधन बेमियादी है।'

'बाबू, तुम्हारा मन मज़बूत है, तुम नहीं समझ सकोगे मेरी विपद्। अच्छी तरह जानती हूँ कि जितना ही छटपटाती हूँ उतना ही डूबती जाती हूँ अगाध जल में—सँभल ही नहीं पा रही।'

'भाभी, एक बात कहता हूँ, सुनो। जब तक तुम यह समझोगी कि कोई तुम्हारा धन छीने लिए जा रहा है, तब तक छाती का पंजर आग में जलता रहेगा। शांति नहीं मिलेगी। किन्तु स्थिर होकर कहो तो भला एक बार: 'दे डाला मैंने! जो सब से अधिक दुर्मूल्य है वही दे डाला उन्हें—जिन्हें सबसे अधिक प्यार करती हूँ!'—सब भार पल-भर में ही उतर जाएगा। मन भर उठेगा आनन्द से। गुरु की कोई ज़रूरत नहीं। केवल कहो तो अभी: 'दे डाला, दे डाला, कुछ भी बाक़ी नहीं रखा, अपना सब कुछ दे डाला! निर्मुक्त होकर, निर्मल होकर जाने के लिये प्रस्तुत हो गई हूँ, दुःख की कोई गाँठ संसार में बाँधकर नहीं छोड़ गई!'

'आहा, कहो, कहो बाबू, बार-बार मुझे वही मंत्र सुनाओ! उन्हें आज तक जो कुछ दे पाई हूँ उसीमें आनन्द पाया है, आज जो नहीं दे पा रही उसीसे इस तरह चोट खा रही हूँ। दूँगी, दूँगी, अपना सब कुछ दे डालूँगी—अब और देर नहीं, अभी, इसी समय। तुम उन्हें बुला लाओ।'

'आज नहीं भाभी, कुछ दिन मन को इसी सुर में बाँध लो, सहज हो ले तुम्हारा संकल्प।'

'नहीं नहीं, और नहीं सहा जाता। जब से कह गए हैं, इस घर को छोड़कर जापानी-घर में जाकर रहेंगे, तब से यह सेज मेरे लिये चिता की सेज हो उठी है। अगर न लौटे तो यह रात कटेगी नहीं—छाती फट जाएगी—मर जाऊँगी। तुम अभी जाकर बुला लाओ सरला को। मैं इस सेल को उखाड़ ही दूँगी अपनी छाती से, डरूँगी नहीं, खूब निश्चयपूर्वक कह रही हूँ तुमसे।'

'अभी समय नहीं आया भाभी, आज रहने दो।'

'कहीं बीत न जाए समय, यही डर है! तुम अभी बुला लाओ।'—परमहंसदेव के चित्र की ओर देखकर दोनों हाथ जोड़कर बोली: 'शक्ति दो, ठाकुर, शक्ति दो, मुक्ति दो मतिहीन अधम नारी को! मेरा यह दुःख मेरे

हो भगवान् को दूर ठेले हुए है, पूजा-अर्चा सब डूब गई है मेरी। बाबू, एक बात कहती हूँ, रोकना मत।'

'कहो।'

'एक बार मुझे पूजा-घर तक हो आने दो—सिर्फ़ दस मिनट के लिये। इससे मुझे शक्ति मिलेगी—तनिक भी भय बाक़ी नहीं रहेगा।'

'अच्छा जाओ, नहीं रोकूँगा।'

'आया!'

'क्या है बिटिया!'

'मुझे पूजा-घर तक ले चल।'

'सो कैसी बात! डाक्टर साहब—'

'डाक्टर यम को रोक नहीं सकता और मेरे देवता को ही रोकेगा?'

'आया, तुम ले जाओ उन्हें, डरो मत, अच्छा ही होगा।'

आया का सहारा लेकर जब नीरजा चली गई तभी आदित्य कमरे में आया। पूछा: 'यह क्या! नीरू नहीं है कमरे में?'

'अभी आती हैं, पूजा-घर तक गई हैं।'

'पूजा-घर? सो तो पास नहीं है। डाक्टर की मनाही जो है।'

'सुनो भैया! इससे डाक्टर की दवा से ज़्यादा लाभ होगा। एक बार केवल फूलों की अंजलि देकर प्रणाम करके ही चली आएँगी।'

जब आदित्य ने नीरजा को चिट्ठी लिखकर भेजी थी तब वह इतने स्पष्ट भाव से नहीं जानता था कि नियति ने उसके जीवन-पट पर जो लिपि अदृश्य स्याही से लिख छोड़ी है, बाहर का ताप लगकर वह हठात् इतनी उज्ज्वल हो उठेगी। पहले वह सरला से कहने आया था कि अब और उपाय नहीं, न्यारे होना ही पड़ेगा।— वही बात कहने की वेला उसके मुँह से उल्टी ही बात निकली। इसके बाद चाँदनी रात में घाट पर बैठे-बैठे उसने बार-बार यही कहा : जीवन के सत्य का देर से ही आविष्कार किया है, किन्तु इसीलिये वह उसे अस्वीकार तो नहीं कर सकेगा। उसका तो कोई क़ुसूर नहीं, लज्जा करने लायक़ भी कुछ नहीं है। अन्याय तभी होगा जब सत्य को छुपाने जाएगा। किंतु छुपाएगा नहीं—यह संकल्प स्थिर है; फलाफल जो होना हो सो हो। यह बात आदित्य ख़ूब भली प्रकार ही समझ गया है कि यदि अपने जीवन के

केन्द्र से—कर्म के क्षेत्र से—आज वह सरला को दूर हटा देगा तो उस एकाकीपन में, उस सूनी नीरसता में उसका सभी कुछ बरबाद हो जाएगा, उसका कामकाज तक बंद हो जाएगा।

'रमेन, तुम हमारी सभी बातें जानते हो ;—मुझे मालूम है।'

'हाँ, जानता हूँ।'

'आज सब लेन-देन चुका दूँगा, पर्दा उठाकर दूर फेंक दूँगा।'

'तुम अकेले ही तो हो नहीं भैया! अपने कंधे के बोझ को इस तरह झाड़-फटकार कर फेंक देने ही से तो काम नहीं चलता। उस ओर भाभी हैं। गृहस्थी की गाँठ बड़ी जटिल होती है।'

'तुम्हारी भाभी के तथा अपने बीच किसी मिथ्या को पोसकर नहीं रख सकूँगा। बचपन से सरला के साथ मेरा जो सम्बन्ध है उसमें कोई अपराध नहीं, इस बात को तो मानते हो न?'

'बेशक मानता हूँ।'

'उसी सहज सम्बंध के तल में गभीर प्यार ढका हुआ था—कभी जान ही नहीं पाया। यह क्या हमलोगों का दोष है?'

'कौन कहता है दोष है ?'

'आज यदि उसी बात को छुपा रखूँ तभी मिथ्याचरण का अपराध होगा। मैं सिर उठाकर ही कहूँगा।'

'छुपाओगे ही क्यों और समारोहपूर्वक प्रकाशित ही भला क्यों करने जाओगे ? भाभी के लिये जो कुछ जानने को था सो उन्होंने स्वयं ही जान लिया है। और थोड़े दिन बाद तो यह परम दुःख की जटा अपने-आप ही ढीली होकर खुल जाएगी। तब आज इसे लेकर तुम नाहक खींचा-तानी मत करो। भाभी जो कुछ कहना चाहती हैं उसे सुनो। उसके उत्तर में तुम्हें भी जो कुछ कहना उचित है सो अपने आप ही सहज होकर निकल आएगा।'

नीरजा को कमरे में आते देख रमेन बाहर निकल गया।

नीरजा कमरे में प्रवेश करके आदित्य को देखते ही भूमि पर लोटकर उसके पावों में मस्तक रखकर अश्रुगद्गद कंठ से बोला : 'क्षमा करो, क्षमा करो मुझे, मैंने अपराध किया है। इतने दिन बाद मुझे त्यागो मत—दूर मत फेंको !'

आदित्य ने दोनों हाथों से उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और धीरे-धीरे बिछौने पर लिटा दिया। कहा :

'नीरू, तुम्हारी व्यथा क्या मैं समझता नहीं ?'—नीरजा की रुलाई थमना नहीं चाहती। आदित्य धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। नीरजा ने उसके हाथों को खींचकर अपनी छाती पर दबाकर रखा, कहा : 'मुझसे सच बताना, मुझे माफ़ कर दिया न ? तुम यदि प्रसन्न न हुए तो मरने पर भी मुझे सुख नहीं मिलेगा।'

'तुम तो जानती हो नीरू, बीच-बीच में हमारे बीच मनान्तर होता ही रहा है, किन्तु क्या कभी उसे लेकर मन के तार भी टूटे हैं ?'

'इससे पहले तो कभी किसी दिन तुम घर छोड़कर नहीं गए। फिर इस बार ही क्यों गए! इतने निठुर तुम क्योंकर हो गए ?'

'मुझसे अन्याय हुआ नीरू, मुझे माफ़ करना ही होगा।'

'तुम भी कैसी बातें करते हो कुछ ठीक नहीं! तुम्हारे ही निकट मेरी सारी सज़ा, सारा पुरस्कार है। तुमसे रूठ कर तुम्हारा विचार करने जाकर ही तो मेरी ऐसी दशा हुई है।—बाबू से सरला को बुला लाने के लिये कहा था, अब तक आए क्यों नही ?'

सरला को बुलवाने की बात सुनने ही आदित्य के

मन में धक्-से आघात लगा। इस समस्या को कम-से-कम आज भर के लिये यदि वह दूर टाल सके तो निश्चिन्त हो। इसीसे वह बोला : 'रात काफ़ी हो गई है, अभी रहने दो।'—तभी नीरजा बोल उठी : 'वह सुनो, मुझे लगता है, वे लोग द्वार के बाहर खड़े राह देख रहे हैं। बाबू, भीतर आ जाओ तुम लोग।'

सरला को लिये हुए रमेन कमरे में आया। नीरजा शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुई। सरला ने पाँव छूकर नीरजा को प्रणाम किया। नीरजा बोली : 'आओ बहन, मेरे पास आओ।'—कहते हुए सरला का हाथ पकड़कर उसे बिछौने पर बिठाया। फिर तकिए के नीचे से गहनों का केस खींचकर एक मोतियों की हार सरला के गले में पहना दिया। कहा : 'एक दिन इच्छा थी कि जब चिता में मेरा दाह हो, उस समय यह हारा मेरे गले में रहे। किंतु उससे यही अच्छा है। मेरी ओर से तुम्हीं इसे गले में पहने रहो—अंतिम दिन तक। विशेष-विशेष दिन यह हार कितनी बार पहना है सो तुम्हारे भैया जानते हैं। तुम्हारे गले में रहने से वे दिन उन्हें याद आ जाया करेंगे।'

'मैं इस योग्य नहीं जीजो, इस योग्य नहीं, मुझे क्यों लज्जित कर रही हो?'

नीरजा ने समझा था, आज उसके सर्वदानयज्ञ का यह भी एक अंग है। किन्तु इस दान के भीतर से उसके अंतरतर मन की ज्वाला ने ही दीप्त होकर अपने को व्यक्त किया—यह बात वह स्वयं भी स्पष्ट नहीं समझ पाई। इस व्यवहार ने सरला को कहाँ तक दुखाया इसे आदित्य ने समझा। वह बोला : 'वह माला तुम मुझे दे दो सरला! उसका मूल्य जितना मेरे निकट है उतना और किसीके निकट नहीं हो सकता। उसे मैं और किसी को नहीं दे पाऊँगा।'—नीरजा बोली : 'हाय मेरे भाग! इतने पर भी मन की बात समझा न सकी! सरला, सुना था, इस बाग़ से तुम्हारे चले जाने की बात तै हुई है। यह मैं किसी भी तरह नहीं होने दूँगी। तुम्हें मैं अपनी घर-गिरस्ती के सब कुछ के साथ ही बाँध रखूँगी—वह हार इसीकी निशानी है। अपना यही बंधन तुम्हारे हाथों सौंप रही हूँ जिससे निश्चिन्त होकर मर सकूँ।'

'भूल कर रही हो जीजी, मुझे बाँधने की इच्छा मत रखना,—भला नहीं होगा उससे!'

'यह कैसी बात है?'

'मैं सच बात ही कहूँगी। इतने दिन तुम मेरा विश्वास कर सकती थीं। किन्तु आज मुझपर विश्वास मत

करना—यह मैं तुम सभीके सामने कहे जती हूँ। भाग्य ने जिस दान से मुझे वंचित कर रखा, किसीको वंचित करके वह दान मैं नहीं लूँगी। यह रहा तुम्हारे पैरों में मेरा प्रणाम! मैं चल दी। अपराध मेरा नहीं, अपराध है मेरे उन देवता का जिनकी पूजा सरल विश्वास के साथ रोज़ दोनों वेला करती आई हूँ। वह पूजा भी आज मेरी समाप्त हुई!'

इतना कहकर सरला तेज़ी से कमरे से बाहर हो गई। आदित्य अपने को रोके नहीं रख सका, वह भी चला गया।

'बाबू, यह क्या हो गया बाबू? बोलो बाबू, कुछ तो कहो।'

'मैंने इसीलिये कहा था, आज की रात उसे मत बुलाओ।'

'क्यों? मन को मुक्त करके मैंने तो सभी कुछ दे डाला। वह क्या इतना भी नहीं समझी?'

'समझी क्यों नहीं! समझ गई कि तुम्हारा मन मुक्त नहीं हुआ। सच्चा सुर नहीं लगा।'

'किसी तरह भी विशुद्ध नहीं हुआ मेरा मन। इतनी मार खाकर भी नहीं हुआ! इसे कौन विशुद्ध कर देगा?

हे संन्यासी, मुझे बचालो ! बाबू, मेरा कौन है, मैं किसके पास जाऊँगी ?

'मैं हूँ भाभी। तुम्हारा भार मैं लूँगा। तुम अभी तनिक सो जाओ।'

'सोऊँगी क्योंकर ? इस घर से यदि वे फिर चले गए तो फिर बिना मौत आए मुझे नींद नहीं आएगी।'

'जा वे नहीं सकते, वह उनकी इच्छा के भी बाहर है, शक्ति के भी। यह लो नींद की दवा, तुम्हें सुलाकर ही मैं जाऊगा।'

'जाओ बाबू, तुम लोग जाओ। वे दोनों कहाँ चले गए, जाकर देखो, नहीं तो मैं ख़ुद ही जाऊँगी। शरीर टूटे तो टूटे !'

'अच्छा, अच्छा, मैं जाता हूँ।'

७

आदित्य को अपने साथ आया देखकर सरला ने कहा : 'क्यों आगए? अच्छा नहीं किया। लौट जाओ। अपने साथ तुम्हें इस तरह उलझने नहीं दूँगी।'

'उलझने दोगी या नहीं ये सवाल नहीं है, उलझ तो गया ही हूँ। वह अच्छा हो या बुरा, उसमें हमारा कोई हाथ नहीं रह गया।'

'ये सब बातें पीछे होंगी, पहले जाकर रोगिणी को शान्त करो।'

'हमारे बाग़ की जो और भी एक शाखा बढ़नेवाली है उसीकी बात—'

'आज रहने दो। मुझे दो-चार दिन सोचने का समय दो ; अभी तो सोचने की शक्ति नहीं।'

रमेन ने आकर कहा : 'जाओ, भैया, भाभी को दवा पिलाकर सुला दो, देर मत करो। किसी भी तरह कोई बातचीत मत करने देना उन्हें, रात काफ़ी हो गई है।'

आदित्य के चले जाने पर सरला बोली : 'कल श्रद्धानन्द पार्क में तुमलोगों की एक सभा होनेवाली है न?'

'हाँ।'

'तुम जाओगे नहीं ?'

'बात तो थी जाने की लेकिन इस बार जाना नहीं होगा।'

'क्यों ?'

'सो तुमसे कहकर क्या होगा !'

'तुम्हें डरपोक कहकर सब तुम्हारी निन्दा करेंगे।'

'जो लोग मुझे नहीं चाहते, वे मेरी निन्दा करेंगे इसमें शक ही क्या है ?'

'तब मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें मुक्ति दूँगी। सभा में तुम्हें जाना ही होगा।'

'कुछ और साफ़ करके कहो।'

'मैं भी जाऊँगी सभा में, हाथ में झंडा लिए हुए।'

'समझा !'

'पुलिस बाधा देगी इसे मानने के लिये तैयार हूँ, लेकिन तुम्हारे बाधा देने पर नहीं मानूँगी।'

'अच्छा, नहीं दूँगा बाधा।'

'तब यही बात ठहरी ?'

'यही।'

'हम दोनों एक साथ चलेंगे—कल साँझ के पाँच बजे।'

'हाँ चलेंगे, लेकिन उसके बाद तो वे दुष्ट लोग हमें एक साथ नहीं रहने देंगे।'

'इसी समय आदित्य आ पहुँचा। सरला ने पूछा : 'यह क्या ! बिल्कुल अभी ही चले आए ?'

'दो-एक बातें करते-न-करते ही नीरजा थककर सो गई, मैं धीरे-धीरे चला आया।'

रमेन बोला : 'मुझे काम है, चलता हूँ।'

सरला हँसती हुई बोली : 'रहने की जगह ठीक कर रखना, भूलना मत।'

'कोई बात नहीं। परिचित जगह है।' कहकर रमेन चला गया।

८

सरला बैठी हुई थी ; उठकर खड़ी हो गई ; बोली : 'जो सारी बातें कहने की नहीं, उन्हें आज मुझसे न कहो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ।'

'डरो मत, कुछ नहीं कहूँगा ।'

'अच्छा, तब मैं ही कुछ कहना चाहती हूँ, सुनो। बोलो, बात रखोगे ?'

'अगर न रखने लायक़ न हुई तो ज़रूर रखूँगा—यह तुम जानती ही हो ।'

'यह समझना बाक़ी नहीं रहा कि मेरा निकट रहना अब बिल्कुल ही नहीं चल सकता। ऐसे समय जीजी की सेवा कर पाती तो ख़ुश होती, लेकिन उसे मेरा भाग्य सह नहीं सकेगा। मुझे अनुपस्थित ही रहना होगा।—ज़रा ठहरो, बात पूरी कर लेने दो।—तुमने तो सुन ही लिया है, डाक्टरों का कहना है कि अब उनके ज़्यादा दिन बाक़ी नहीं। इसी बीच उनके मन का काँटा तुम्हें उखाड़कर फेंक देना होगा। इन कुछ दिनों में उनके जीवन पर मेरी छाया किसी भी तरह मत पड़ने देना ।'

'मेरे मन से यदि अपने-आप छाया पड़े तो क्या कर सकता हूँ ?'

'नहीं नहीं, अपने संबंध में ऐसी अश्रद्धा की बात मत कहो। साधारण बंगाली लड़के की तरह गीली मिट्टी का बना पिलपिला मन है क्या तुम्हारा ? कभी नहीं ! मैं तुम्हें जानती हूँ ।'—फिर आदित्य का हाथ अपने हाथों में लेकर बोली : 'मेरी ओर से यह व्रत तुम्हें लेना ही होगा : दीदी के जीवनांत काल के ये अंतिम कुछ दिन ही बाक़ी हैं—भरपूर कर दो इन्हें अपने दाक्षिण्य से ! एकबारगी भुला दो उनके मन से यह बात कि उनके सौभाग्य के पूर्ण घट को चूरचूर कर देने के लिये ही मैं कभी उनके जीवन में आई थी ।'

आदित्य चुप खड़ा रहा ।

'वादा करो भाई !'

'करूँगा, लेकिन तुम्हें भी ऐसा ही एक वादा करना होगा। कहो, बात रखोगी ।'

'तुममें और मुझमें एक अंतर है। यदि मैं तुमसे कोई प्रतिज्ञा कराऊँ तो वह साध्य है, किन्तु यदि तुम मुझसे प्रतिज्ञा कराओ तो वह शायद असंभव भी हो सकती है ।'

'नहीं, असंभव नहीं होगी।'

'अच्छा, कहो।'

'जिस बात को मन-ही-मन कहता हूँ उसे तुम्हारे निकट मुँह से कहना अपराध नहीं। तुम जो कहती हो उसे स्वीकार करता हूँ और बिना त्रुटि के उसका पालन करना भी संभव होगा—यदि केवल इतनी बात निश्चित जान लूँ कि एक दिन तुम मेरी समस्त शून्यता को पूर्ण कर दोगी।—चुप क्यों रह गईं ?'

'क्योंकि जानती नहीं, भाई, प्रतिज्ञा-पालन में किस दिन कौन-सा विघ्न आ पड़ेगा।'

'विघ्न क्या तुम्हारे अन्तर में है ?—यही बताओ पहले।'

'क्यों मेरा जी दुखाते हो ? क्या तुम जानते नहीं कि ऐसी भी बातें होती हैं जिन्हें भाषा में व्यक्त करने पर उनकी जोत बुझ जाती है ?

'अच्छा, तुम्हारे मुँह से इतना तो सुन लिया ; यही सुनकर काम पर चल देता हूँ।'

'लौटकर पीछे तो नहीं देखोगे ?'

'नहीं। किन्तु अव्यक्त प्रतिज्ञा की सील-मुहर करने की इच्छा हो रही है तुम्हारे मुख पर।'

'जो सहज है, उसे लेकर ज़ोर मत करो। अभी रहने दो।'

'अच्छा! तब एक बात पूछूँ, तुम अब करोगी क्या? रहोगी कहाँ?'

'वह भार रमेनभैया ने ले लिया है।'

'रमेन तुम्हें आश्रय देगा! उस हतभागे के यहाँ चूल्हा-चक्की भी है?

'डरो मत। पक्का आश्रय उनकी अपनी संपत्ति में शुमार नहीं, किंतु कोई बाधा भी नहीं पड़ेगी।'

'मैं जान तो सकूँगा?'

'ज़रूर जान सकोगे, बात दिए जाती हूँ। मगर इस बीच मुझे देखने के लिये तनिक भी बेचैन नहीं हो सकोगे, प्रतिज्ञा करो।'

'तुम्हारा मन भी बेचैन नहीं होगा?'

'यदि हुआ तो अंतर्यामी के सिवाय और कोई नहीं जान पाएगा।'

'अच्छा, किन्तु जाने की वेला भिक्षा-पात्र एकदम सूना रखकर ही विदा दोगी?'

पुरुष की आँखें छलक उठीं। सरला ने पास आकर चुपचाप मुख ऊपर कर दिया।

६

'रोशनी !'

'क्या है बिटिया ?'

'कल से सरला नहीं दिखाई दे रही ?'

'सो क्या कहती हो ! जानतीं नहीं, सरकार बहादुर ने उन्हें सीधे जेलखाने भेज दिया है ?'

'क्यों, क्या किया था उसने ?'

'दरबान को मिलाकर बड़े लाट की मेम साहब के कमरे में घुसी थी।

'क्या करने ?'

'जिस संदूकचे में महारानी की सील-मुहर रहती है उसीको चुराने। अच्छा जीवट है !'

'इससे फ़ायदा ?'

'लो सुनो भला ! अरे उसीमें तो सब कुछ है। लाट साहब को फाँसी दे सकती थी। उसी मुहर की छाप से तो इतना बड़ा राज चलता है।'

'और देवर बाबू ?'

'सेंध लगाने का औजार निकला है उनकी पगड़ी के भीतर से। उन्हें हिरासत में ले लिया गया है। पचास

बरस गिट्टी तुड़ाई जायगी। अच्छा, बिटिया, एक बात पूछूँ, घर से जाते समय सरला दीदी अपनी जाफरानी रंग की साड़ी दे गईं। बोलीं : अपनी बहू को दे देना।—मेरी आँखें भीज आईं। उन्हें कुछ कम दुःख तो नहीं दिया! यह साड़ी अगर रखे रहूँ तो कंपनी बहादुर पकड़ेंगी तो नहीं?'

'कोई डर नहीं। लेकिन जल्दी जा, बाहर के कमरे में अख़बार पड़ा है, ले तो आ।'

नीरजा ने अख़बार पढ़ा। उसे बहुत अचरज हुआ, आदित्य ने इतनी बड़ी ख़बर भी उसे नहीं सुनाई। क्या उसपर अश्रद्धा करके? जेल जाकर इस लड़की ने बाज़ी मार ली। यदि शरीर रहता तो क्या मैं भी नहीं जा सकती थी? हँसते-हँसते फाँसी पर झूल सकती थी।

'रोशनी, अपनी सरलादीदी का काण्ड देख लिया? सरे बाज़ार भले घर की लड़की होकर—'

आया बोली : 'याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं; चोरों-बटमारों को भी मात दे दी! छिः छिः!'

'वह सभी बातों में बेकार कूदकर बहादुरी दिखाया करती है। बेहयाई की हद हो गई! बाग़ से शुरू करके जेलख़ाने तक। मरते-मरते भी ग़ुरूर नहीं जाता।'

आया को जाफ़रानी साड़ी की याद आ गई। बोली : 'लेकिन बिटिया, दीदी का दिल दरिया है!'

बात नीरजा के मर्म में जा लगी; वह जैसे हठात् धक्का खाकर जाग उठी। बोली : 'तूने ठीक कहा, रोशनी, ठीक कहा। मैं भूली। शरीर ख़राब रहने से ही मन ख़राब हो जाता है। पहले से जैसे नीचे उतर आई हूँ। छिः छिः, अपने आपको मारने का जी होता है। सरला चोखी लड़की है, झूठ बात उसे छू नहीं गई। ऐसी लड़की देखने में नहीं आती। मुझसे तो कहीं अच्छी है। तू जा, फ़ौरन मैनेजर गणेशबाबू को बुला ला।'

आया गई, तो नीरजा पेंसिल लेकर एक चिट्ठी लिखने बैठी। गणेश आया। नीरजा बोली : 'चिट्ठी पहुँचा सकोगे जेल मे सरला दीदी के पास?'—गणेश को अपने कृतित्व का अभिमान था। बोला : 'पहुँचा दूँगा, अलबत् कुछ ख़र्च बैठेगा। लेकिन, माँजी, लिखा क्या है, सो एक दफ़ा सुनूँ, क्योंकि पुलिस के हाथों जाएगी चिट्ठी।'—नीरजा ने पढ़कर सुनाया : 'धन्य है तुम्हारी महानता। अब की बार जब तुम जेलख़ाने से वापस आओगी तब देखोगी कि तुम्हारे रास्ते के साथ मेरा रास्ता एक हो गया है।'—गणेश बोला : 'वह जो रास्ते की बात लिखी है न,

वही ज़रा सुनने में कैसी-कैसी लगती है। ख़ैर, अपने वकील साहब को दिखलाकर ठीक करा लिया जाएगा।'

गणेश चला गया। नीरजा ने मन-ही-मन रमेन को प्रणाम करके कहा : 'बाबू, तुम्ही मेरे गुरु हो।'

१०

एक प्याले में औषधि लिए हुए आदित्य कमरे में आया। नीरजा बोली : 'यह अब क्या है?'

आदित्य ने उत्तर दिया : 'डाक्टर कह गया है, एक-एक घंटे पर दवा पिलानी होगी।'

'दवा पिलाने के लिये शायद मुहल्ले भर में कोई और आदमी नहीं जुटा? न हो, दिन के समय के लिये एक नर्स रख दो न—अगर मन इतना हो उद्विग्न होता है तो।'

'तुम्हारी सेवा के बहाने अगर तुम्हारे पास आने का सुयोग मिले तो छोड़ूँगा ही क्योंकर?'

'सो उसकी अपेक्षा अगर सुयोग निकालकर बाग़ के काम पर जाओ तो कहीं ज्यादा खुश हूँगी। मैं यहाँ पड़ी हुई हूँ और मेरी बगिया वहाँ दिन-दिन चौपट हुई जा रही है।'

'होने दो चौपट! पहले अच्छी हो जाओ, फिर हम दोनों मिलकर पहले की तरह काम-काज में जुट जाएँगे।'

'सरला चली गई, तुम अकेले पड़ गए, कामकाज में मन नहीं लगता। लेकिन और चारा ही क्या है? रोज़गार में नुक़सान भी तो नहीं होने दिया जा सकता।'

'मैं नुक़सान की बात नहीं सोच रहा, नीरू ! बाग़बानी मेरा रोज़गार है—यह बात इतने दिन तक तुम्हींने तो भुला रखी थी। कामकाज में इसीलिये सुख पाता था। अब मन नहीं लगता।'

'इस तरह अफ़सोस क्यों कर रहे हो ? अभी-अभी कल तक तो बड़ी अच्छी तरह काम करते आ रहे थे। अगर कुछ दिनों के लिये काम रुक ही जाए तो इसे लेकर इतने व्याकुल मत होओ।'

'पंखा चला दूँ ?'

'देखो, ज्यादती मत करो तुम। ये सब काम तुम्हारे करने के नहीं। यह सब मुझे और भी बेचैन कर देता है। अगर किसी तरह दिन ही काटना हो तो तुम्हारा होर्टीकल्चरिस्ट-क्लब भी तो है।'

'तुम्हें जो रंगीन लिली बहुत प्यारी है वह बगिया में बहुत खोजने पर भी एक न मिली। इस दफ़ा अच्छी बारिश न होने से पौधों में जान नहीं है।'

'क्या फ़ुज़ूल बोले जा रहे हो। इससे तो अच्छा तुम हला माली को बुला दो, मैं लेटे-लेटे ही बगिये का काम करूँगी। तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मैंने खाट पकड़ रखी है तो मेरा बाग़ भी खाट पकड़ लेगा? सुनो

मेरी बात। सूखे हुए सीज़न-फूलों के पौधों को उखाड़कर वहाँ की मिट्टी तैयार करा लो। मेरे ज़ीने के नीचे की कोठरी में सरसों की खली के बोरे पड़े हैं। हला के पास उसकी ताली है।'

'अच्छा? उसने तो किसी दिन मुझसे इसके बारे में साँस तक नहीं ली।'

'वह क्यों लेने चला। उसे क्या तुम लोगों ने कम दिक़ किया है? कच्चा साहब जिस तरह पक्के किरानी की परवा नहीं करता, वैसा ही कहो और क्या!'

'हला माली के बारे में अगर सच बात कहने चलूँ तो वह अप्रिय हो उठेगी।'

'अच्छा, मैं इसी बिछौने पर पड़े-पड़े ही उससे काम कराऊँगी। देखना, दो दिन में ही बाग़ का चेहरा फिरता है कि नहीं। बगिया का नक़शा मुझे दे दो—और मेरी बाग़ की डायरी। नक़शे में पेंसिल से निशान लगा-लगाकर सारा इन्तज़ाम करा लूँगी।'

'क्या इसमें मेरा कोई हाथ नहीं होगा?'

'नहीं, जाने से पहले इस बाग़ पर समूची अपनी छाप छोड़कर जाऊँगी। कहे रखती हूँ, रास्ते के किनारे के वे बाटल्-पाम मैं एक भी नहीं रखूँगी। वहाँ झाऊ की

क़तार रोप दूँगी। ऊँहूँ, इस तरह सिर मत हिलाओ। जब हो जाय तब देखना। तुम्हारा वह लान मैं नहीं रहने दूँगी, वहाँ संगमर्मर की एक वेदी बँधवा दूँगी।'

'वेदी क्या उस जगह फबेगी?'

'चुपचाप देखते रहो, ख़ूब फबेगी। तुम कुछ नहीं बोल सकोगे। कुछ दिनों के लिये यह बाग़ सिर्फ़ मेरा होगा, संपूर्ण मेरा। फिर इसके बाद मैं उसे तुम्हें दे जाऊँगी। तुम समझते थे कि मेरी ताक़त चली गई। दिखला दूँगी कि क्या कर सकती हूँ। और तीन-जन माली मुझे चाहिए और छः-एक मज़दूर। याद है तुमने एक दिन कहा था कि बाग़ को सजाने की शिक्षा मुझे नहीं मिली? मिली कि नहीं, इसकी परीक्षा दे जाऊँगी। तुम्हें यह याद रखना ही पड़ेगा कि यह बाग़ मेरा है, मेरा ही है, इसपर से मेरा स्तत्व किसी भी तरह नहीं टल सकता!'

'अच्छी बात। तो मैं क्या करूँगा?'

'तुम अपनी दूकान सँभालो; वहाँ तुम्हारा आफ़िस का काम भी तो कम नहीं।'

'तुम्हारी देखभाल करना भी मना है?'

'हाँ, हमेशा मेरे पास ही रह सको—वह-मैं अब कहाँ

रही! अब तो सिर्फ़ किसीकी याद भर दिला सकती हूँ,—सो उससे क्या फ़ायदा!'

'अच्छी बात है। जब मुझे अपने पास सहन कर सकोगी, तभी आऊँगा। मुझे बुलवा भेजना। आज डलिया में तुम्हारे लिये गंधराज के फूल लाया हूँ, रखे जाता हूँ तुम्हारी सेज पर—कुछ ख्याल मत करना।'—कहकर आदित्य उठ खड़ा हुआ।

नीरजा हाथ पकड़कर बोली: 'नहीं, जाओ मत, तनिक बैठो।'—फूलदानी का एक फूल दिखलाकर बोली: 'जानते हो इस फूल का नाम?'

आदित्य को मालूम है कि किस उत्तर से उसे ख़ुशी होगी, इसीसे झूठ-मूठ कह दिया: 'नहीं, नहीं जानता।'

'मैं जानती हूँ। बताऊँ?—पैटूनिया। तुम समझते हो, मुझे कुछ नहीं आता—मूर्ख हूँ मैं।'

आदित्य ने हँसकर कहा: 'सहधर्मिणी हो तुम, यदि मूर्ख हुई तो कम-से-कम मेरे बराबर ही मूर्ख होगी। हमारे जीवन में मूर्खता का कारोबार साझे से चल रहा है।'

'वही कारोबार मेरे भाग्य में इस बार चुकने आया। वह दरवान जो वहाँ बैठे-बैठे आराम से सुरती मल रहा है,

वह ड्योढ़ी पर ही होगा, केवल कुछ दिनों बाद मैं ही नहीं रहूँगी। वह बैलगाड़ी जो पत्थर का कोयला उँड़ेलकर ख़ाली लौट रही है, उसका आनाजाना रोज़ ही चलता रहेगा, किन्तु चलेगा नहीं मेरा यह हृदय-यंत्र !'—सहसा आदित्य का हाथ ज़ोर से दबाकर बोली : 'बिल्कुल ही नहीं रहूँगी ? कुछ भी नहीं रहेगा ? बताओ मुझे, तुमने तो बहुत पोथियाँ पढ़ी हैं, मुझसे सच-सच कहो न ?'

'जिनकी पोथी पढ़ी है उनकी विद्या की दौड़ जहाँ तक है वहीं तक मेरी भी है। यम के द्वार के पास आकर थम गया हूँ, और आगे नहीं बढ़ सका।'

'अच्छा, बताओ न, ख़ुद तुम्हें कैसा मालूम होता है ! ज़रा भी कुछ बाक़ी नहीं रहेगा—इतना-सा भी नहीं ?'

'अभी हूँ, यदि यही संभव है, तो उस समय भी हूँगा, यह भी संभव होगा।'

'ज़रूर संभव होगा। वह बाग़ संभव हो और मैं ही असंभव हो जाऊँ—ऐसा हो ही नहीं सकता, किसी भी तरह नहीं। साँझ के समय इसी तरह झुटपुटे में कौए अपने घोंसलों में लौटेंगे, इसी तरह सुपारीवृक्ष की शाखाएँ डोलती होंगी—ठीक मेरी ही दृष्टि के सामने। उस दिन तुम याद रखना कि मैं हूँ, समूचे बाग़ में मैं

व्याप्त हूँ। हवा जब तुम्हारे बालों को उड़ाए तब याद करना कि उसमें मेरी अँगुलियों का परस है। बोलो, याद करोगे?'

आदित्य को कहना पड़ा: 'करूँगा।'—किन्तु ऐसे सुर में नहीं कह पाया जिससे उसका विश्वास प्रमाणित हो सके।

नीरजा बेचैन होकर बोल उठी: 'जो लोग तुम्हारी पोथियाँ लिखते हैं, बड़े पंडित बनते हैं, वे लोग कुछ भी नहीं जानते। मुझे निश्चित मालूम है, मेरी बात पर विश्वास करो: मैं यहीं रहूँगी, तुम्हारे ही पास रहूँगी, बिल्कुल सुस्पष्ट देख पा रही हूँ मैं। यही तुमसे कहे जाती हूँ, वचन हारे जाती हूँ कि तुम्हारी बगिया के पेड़-पौधे सभी कुछ की देख भाल करूँगी, जिस तरह पहले करती थी उससे कहीं अच्छी तरह करूँगी। किसीकी भी ज़रूरत नहीं होगी—किसीकी भी नहीं!'

नीरजा बिस्तर पर लेटी हुई थी; उठकर तकिए से टिककर बैठ गई, बोली: 'मुझपर दया करो, दया करो। तुम्हें इतना प्यार करती हूँ—इसे ही याद करके मुझ पर दया करो। इतने दिन जिस ममता से तुमने मुझे अपने घर में जगह दी, उस दिन भी ऐसे ही देना। हर ऋतु

में जो फूल खिलें, उन्हें मन ही मन चुनकर मेरे हाथों में देना। लेकिन यदि तुम निठुर हो गए तो मैं यहाँ नहीं रह पाऊँगी। मेरी बगिया ही अगर मुझसे तुमने छीन ली तो न जाने किस सुनसान में—हवा के साथ—मैं उड़ती-भटकती फिरूँगी!'

नीरजा की दोनों आँखों से आँसू झरने लगे। आदित्य मोढ़ा छोड़कर बिछौने पर जा बैठा। नीरजा का मुँह छाती से लगाकर धीरे-धीरे सिर पर हाथ फेरने लगा। बोला: 'नीरू, तबीयत को ख़राब नहीं करते।'

'आग लगे मेरी इस तबीयत को! मैं और कुछ नहीं चाहती, केवल तुम्हें चाहती हूँ—इस सभी कुछ के साथ! सुनो, एक बात कहती हूँ, नाराज़ न होना मुझपर, नाराज़ न होना'—कहते-कहते नीरू का गला रुँध आया। फिर तनिक शांत होकर बोली: 'मैंने सरला के साथ अन्याय किया है। तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ, अब और अन्याय नहीं करूँगी। जो हो गया उसके लिये मुझे माफ़ करो, लेकिन मुझे प्यार करो, प्यार करो तुम! तुम जो कुछ चाहते हो, मैं वही करूँगी।'

आदित्य बोला: 'शरीर के साथ-साथ तुम्हारा मन भी

अस्वस्थ था नोरू, इसीलिये झूठमूठ तुमने अपने आपको पीड़ित किया।'

'सुनो, मैं बताऊँ। कल रात से बारबार प्रण किया है कि अब को भेंट होने पर उसे अपनी ही छोटी बहन को तरह निर्मल चित्त से छाती से लगाऊँगी। इस अंतिम प्रतिज्ञा को रक्षा में तुम मेरी सहायता करो। बोलो, मैं तुम्हारे प्रेम से वंचित नहीं होऊँगी, तब मैं सभी को अपना प्यार देकर जा सकूँगी।'

इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया आदित्य ने, केवल बार-बार उसका मुख और मस्तक चूम लिया। नीरजा की आँखें ढुल आईं। थोड़ी देर बाद उसने पूछा : 'सरला कब छूटेगी, दिन गिन रही हूँ। डरती हूँ, कहीं उसके पहले ही दम न टूट जाए,—कहीं उसे बतला ही न पाऊँ कि मेरा मन बिल्कुल साफ़ हो गया है।—अब दीवा जला दो। मुझे पढ़कर सुनाओ अक्षय बड़ाल की 'एषा' (कामना)।'—तकिये के नीचे से नीरजा ने किताब निकालकर बढ़ा दी। आदित्य पढ़कर सुनाने लगा।

सुनते-सुनते जैसे ही तनिक आँखें झिपने को आई थीं कि आया ने कमरे में आकर कहा : 'चिट्ठी।' तन्द्रा

टूटने से नीरजा चौंक उठी, छाती धड़कने लगी। किसी मित्र ने आदित्य को समाचार दिया है कि जेल में स्थानाभाव के कारण जिन कुछेक क़ैदियों को मियाद चुकने से पहले ही छोड़ा जा रहा है, उनमें से सरला भी एक है। आदित्य का मन उछल पड़ा। प्राणपण शक्ति से हृदय का उल्लास दबाए रहा। नीरजा ने पूछा: 'किसकी चिट्ठी है? क्या ख़बर है?'

पढ़ते हुए कहीं गला काँप न उठे, इस भय से आदित्य ने चिट्ठी नीरजा के हाथों में ही थमा दी। नीरजा ने आदित्य के मुँह की ओर देखा। मुँह में बात नहीं थी लेकिन बात की ज़रूरत भी नहीं थी। कुछ देर नीरजा के मुँह से भी बात नहीं निकली। फिर ख़ूब ज़ोर लगाकर बोली: 'तब तो और देर नहीं। आज ही आएगी। उसे मेरे पास लाओगे?'

'यह क्या! क्या हुआ नीरू! नर्स! डाक्टर हैं?'

'बाहर हैं।'

'फ़ौरन बुलाओ।...डाक्टर! अभी-अभी ख़ूब हलकी तबीयत से बातचीत कर रही थी, बोलते-बोलते अचानक बेहोश हो गई।'

डाक्टर नाड़ी थामे हुए चुप हो गया।

थोड़ी देर में रोगी ने आँखें खोलते ही कहा : 'डाक्टर! मुझे बचाना ही होगा। सरला को देखे बिना नहीं जा सकूँगी, उससे भला नहीं होगा। उसे असीस दूँगी—अंतिम असीस!'

आँखें फिर मुँद आईं। हाथ की मुट्ठी सख्त हो गई; नीरजा बोल उठी : 'बाबू! अपनी बात रखूँगी, कृपण की तरह नहीं मरूँगी!'

कभी चेतना क्षीण होने से दुनिया धुँधली हो आती तो कभी फिर प्रदीप की तरह जीवन-शिखा जल उठती। पति से रह-रहकर पूछती : 'कब आएगी सरला?'

रह-रहकर पुकार उठती : 'रोशनी!'

'बिटिया!'

'बाबू को अभी बुला दे।'—फिर एकबार स्वयं ही बोल उठी : 'मेरा क्या होगा, बाबू! दूँगी, दूँगी, दूँगी—सब दे डालूँगी!'

तब रात के नौ बजे थे।

नीरजा के कमरे के कोने में मोमबत्ती की हलकी रोशनी जल रही है। हवा में दोलनचंपे की ख़ुशबू बसी हुई है। खुली खिड़की से दिखाई दे रही है बगिया के वृक्षों की पुंजीभूत कालिमा और उसीके ऊपर आकाश में 'कालपुरुष'

का नक्षत्र-पुञ्ज। रोगी की नींद को आशंका से सरला को द्वार के बाहर खड़ा करके आदित्य धीरे-धीरे नीरजा के बिछौने के पास आया।

देखा, होठ काँप रहे हैं, मानो निःशब्द कुछ जप रही हो! सुधि और बेसुधी से जड़ित विह्वल मुख है। कानों के पास तक सिर झुकाकर आदित्य ने धीरे से कहा: 'सरला आई है।' तनिक सी आँखें खोलकर नीरजा बोली: 'तुम जाओ!'—एक बार पुकार उठी: 'बाबू!'—कहीं से कोई उत्तर नहीं सुनाई दिया।

सरला ने आकर प्रणाम करने के लिये जैसे ही पाँव छुए, वैसे ही मानों विद्युत् के आघात से नीरजा का समस्त शरीर आक्षिप्त हो उठा। पैर द्रुत गति से अपने आप ही खिंच गए। टूटे गले से नीरजा बोली: 'नहीं हुआ, आखिर नहीं हुआ! नहीं दे सकूँगी, नहीं दे सकूँगी!'

बोलते-बोलते देह में अस्वाभाविक शक्ति आ गई—आँखों की पुतलियाँ फैलकर जलने लगीं। ख़ूब दबाकर पकड़ रखा सरला का हाथ, कण्ठस्वर तीक्ष्ण हो आया, बोली: 'जगह नहीं मिलेगी, राक्षसी! तुझे जगह नहीं मिलेगी! मैं रहूँगी, रहूँगी, यहीं रहूँगी!'

और सहसा ढीली शेमीज़ पहनी हुई वह पाण्डुवर्ण

शीर्णमूर्ति शय्या त्यागकर उठ खड़ी हुई। अद्भुत कंठ से बोली : 'भाग, भाग, भाग फ़ौरन, नहीं तो दिन-दिन सेल बेधूँगी तेरी छाती में, तेरा ख़ून सोख लूँगी!'—कहते-कहते नीरजा फ़र्श पर ढेर हो गई।

गले की आवाज़ सुनकर आदित्य दौड़ता हुआ कमरे में आया। तब तक प्राणों की सारी शक्ति को समाप्त करके नीरजा के अंतिम शब्द स्तब्ध हो चुके थे।

ज्ञातव्य

'फुलवाड़ी' मूल बँगला पुस्तक 'मालञ्च' का हिन्दी अनुवाद है। मूल उपन्यास सबसे पहले 'विचित्रा' नामक बँगला मासिक पत्रिका में सन् १९३४ में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद 'मालंच' नाम से प्रथम बार 'विश्वभारती पत्रिका' के तृतीय खण्ड के प्रथम दो अङ्कों में निकला था। यह उसीका संशोधित संस्करण है। इसका पाठ शान्तिनिकेतन के रवीन्द्र-भवन में सुरक्षित बँगला की पाण्डुलिपि से मिलाकर ग्रहण किया गया है।

दो रुपया बारह आना